



मजदूर बिगुल

नोएडा मामले में यूपी पुलिस द्वारा दायर चार्जशीट: गलत तथ्यों, सफेद झूठों और मनगढ़न्त कहानियों का पुलिन्दा 7

असामान्य मौसमी बदलावों से पनपी ताप लहर का कहर झेल रही मेहनतकश जनता 9

ग्रेट निकोबार परियोजना : विकास के नाम पर प्राकृतिक सम्पदा के दोहन के लिए पूँजीपतियों को खुली छूट 11

मजदूर-मेहनतकश साथियो! मोदी सरकार के खिलाफ देशभर में चल रहे छात्र-युवा आन्दोलन का साथ दो! ये हमारे ही बच्चे हैं!

छात्रों-युवाओं के राजकीय दमन की हर कोशिश का विरोध करो!

मौजूदा स्वतःस्फूर्त आन्दोलन को फ़ासीवाद-विरोधी सचेतन क्रान्तिकारी जनान्दोलन में तब्दील करो!

“अगर कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी अधिकारों से वंचित रखती है तो जनता का यह अधिकार ही नहीं बल्कि आवश्यक कर्तव्य बन जाता है कि ऐसी सरकार को बदल दे या समाप्त कर दे।

— शहीदेआज़म भगतसिंह

मजदूर साथियो! शहीदेआज़म भगतसिंह के ये शब्द वर्तमान दौर से ज्यादा प्रासंगिक शायद ही पहले कभी इतने रहे हों। इस वक़्त पूरे देश में छात्र-युवा आन्दोलन उबाल पर है। पिछले

12 सालों में फ़ासीवादी मोदी सरकार की छात्र-युवा विरोधी नीतियों, लगातार महँगी होती शिक्षा, अभूतपूर्व बेरोज़गारी और भ्रष्ट नाक्राबिल शिक्षा व्यवस्था की वजह से जो खिलवाड़ इस देश के छात्रों-युवाओं के जीवन, भविष्य और सपनों के साथ किया गया, उसके चलते युवा दिलों में लम्बे समय से सुलग रहे गुस्से की ही अभिव्यक्ति हम देश के कई शहरों और कस्बों में सड़कों पर उमड़ते हुए देख रहे हैं। दिल्ली, मुम्बई, हैदराबाद, नासिक, कोलकाता, इलाहाबाद, पटना, बंगलुरु समेत देश के दर्जनों बड़े-छोटे शहरों में छात्र-युवा स्वतःस्फूर्त तरीके से हजारों की संख्या

सम्पादकीय अग्रलेख

में सड़कों पर उतर रहे हैं और मोदी सरकार के शिक्षा मंत्री धर्मेन्द्र प्रधान के इस्तीफ़े की माँग कर रहे हैं और एनटीए जैसे भ्रष्ट, निकम्मे संस्थान को ख़त्म करने की बात कर रहे हैं। कई जगहों पर यह भी देखने को मिला है कि यह आन्दोलन केवल छात्रों तक सीमित नहीं रहा है और जनसमुदाय के अलग-अलग हिस्सों से भी इसे भरपूर समर्थन मिल रहा है और वे भी बढ़-चढ़ कर इस संघर्ष में हिस्सेदारी कर रहे हैं।

दरअसल यह पिछले 12 सालों में मोदी-शाह के फ़ासीवादी निज़ाम द्वारा

लायी गयी तबाही-बरबादी के खिलाफ़ आम तौर पर जनता का गुस्सा है जो धीरे-धीरे एक व्यापक आन्दोलन की शक्ल अख़्तियार करता हुआ दिख रहा है। ऐसे में, इस देश के मजदूर वर्ग को भी इस आन्दोलन के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होना चाहिए। यह आन्दोलन आपका भी उतना ही है, जितना कि देश के छात्रों-युवाओं का! यह आन्दोलन आपके बच्चों का है, उनके भविष्य का है। और यह बात इस देश के मजदूरों-मेहनतकशों से बेहतर कौन जान सकता है जो खुद अभी कुछ महीने पहले तक अपनी बेहद बुनियादी माँगों, जैसे कि न्यूनतम मजदूरी, आठ

घण्टे के कार्यदिवस, डबल रेट से ओवरटाइम का भुगतान, बेहतर कार्यस्थितियाँ आदि को लेकर गुड़गाँव-मानेसर से लेकर नोएडा, पानीपत, सूरत, बरौनी तक सड़कों पर उतरे थे और इसी फ़ासीवादी हुकूमत ने उनके संघर्षों का भी बर्बर दमन किया था! इसलिए आज इस दमनकारी सत्ता के खिलाफ़ चल रहे छात्रों-युवाओं के इस आन्दोलन में हमें भी पुरजोर तरीके से शामिल होना चाहिए।

लेकिन सत्ता के नशे में चूर प्रधान “सेवक” नरेन्द्र मोदी और भाजपा के मंत्रियों-नेताओं का रुख इस आन्दोलन (पेज 3 पर जारी)

'केचुआ' ने एसआईआर प्रक्रिया के ज़रिये दाँव पर लगा दी करोड़ों लोगों की ज़िन्दगी!

एसआईआर (SIR) चोर दरवाज़े से एन.आर.सी. (NRC) लागू करने का कुत्सित प्रयास है!

● वारुणी

"लोगों पर नियंत्रण करने और उन्हें पूरी तरह अपने वश में कर लेने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उनकी आज़ादी थोड़ी-थोड़ी छीनी जाये, अधिकारों को एक हज़ार छोटी-छोटी और पता भी न चलने वाली कटौतियों से कम किया जाये। इस तरीके से, लोगों को इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के छिनने का पता ही नहीं चलेगा और जब उन्हें पता चलेगा तब तक इन बदलावों को वापस लौटाना नामुमकिन हो जायेगा।"

— एडोल्फ़ हिटलर, माइन कैम्फ़ (आत्मकथा)

एक वक़्त था 2019 का जब जनता ने एलान किया था — ‘हम काग़ज़ नहीं दिखायेंगे!’ देश भर में हज़ारों की संख्या में लोग सीएए-एनआरसी क़ानून के खिलाफ़ सड़कों पर खूँटा गाड़ कर बैठ गये थे और इस फ़ासीवादी मोदी सरकार को अपने क्रदम पीछे लेने पड़े थे! और एक वक़्त आज का है जब देश की पूरी जनता अपने कागज़ों का जुगाड़ करते और जुटाते हुए सड़कों पर लाइन में लगी हुई है ताकि नयी मतदाता सूची से उनका नाम न काट दिया जाये! यह प्रक्रिया बिहार से शुरू की गयी, जब

2025 में बिहार विधानसभा चुनावों से पहले एसआईआर करवाने की घोषणा हुई थी। इसके खिलाफ़ विरोध के कई स्वर उठे लेकिन वे बहुत सीमित दायरे में थे इसलिए उन विरोधों का कोई नतीजा नहीं निकला।

एसआईआर करवाने के पीछे कई तर्क दिये जा रहे थे मसलन, कई लोग पलायन कर चुके हैं, कई लोगों की मृत्यु हो चुकी है और कई नये मतदाताओं को भी सूची में शामिल किया जाना है, इन्हीं विसंगतियों को दूर करने के लिए एसआईआर करवाया जाना ज़रूरी है।

जनता को यह बताया गया कि यह एक सामान्य प्रक्रिया है जोकि आज़ादी के बाद कई बार की जा चुकी है। पिछली मतदाता सूची में सुधार 2002-2004 में किया गया था, तो दो दशक के बाद मतदाता सूची का नवीनीकरण करना ज़रूरी हो गया है। ज़ाहिर है कि एसआईआर करने के पीछे दिये जा रहे ये तर्क सही थे। लेकिन इन सभी तर्कों से ऊपर एक ऐसा ख़ास ‘तर्क’ इस प्रक्रिया को वाजिब ठहरा रहा था जोकि भाजपा की सभी चुनावी रैलियों में देखने को मिला, वह था भारत में गैरक़ानूनी तरीके

से रह रहे अप्रवासी! हालाँकि 14 राज्यों में पूरी हो चुकी एसआईआर की प्रक्रिया के बाद भी अभी तक इन अप्रवासियों की संख्या का पता नहीं चल सका है! शायद इतनी ज़्यादा संख्या में अप्रवासी घुस आये हैं कि गिनती करने में समय लग रहा होगा!

बहरहाल फ़ासीवादी मोदी सरकार ने अपने गुरु एडोल्फ़ हिटलर से सीख लेते हुए एसआईआर की इस प्रक्रिया को एक साथ पूरे देश में लागू करने की बजाय इसे तीन चरणों में लागू करवाया। (पेज 5 पर जारी)

बना बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद के जन्मदिवस (23 जुलाई) के अवसर पर...

‘यश की धरोहर’ पुस्तिका से एक अंश

आज़ाद का जन्म हद दर्जे की गरीबी में हुआ था। वे किसी बड़े बाप के बेटे न थे। उनके पिता पं. सीताराम तिवारी मूलतः उत्तर-प्रदेश के जिला उन्नाव के ग्राम बदरका के रहने वाले थे और संवत 1956 में देशव्यापी अकाल के समय जीविकोपार्जन के लिए घर से निकल कर भावरा में सरकारी बाग की रखवाली का काम करने लगे थे। वेतन पाँच रुपया मिलता था जिस पर ही वे अपनी पत्नी और एक बच्चे का (आज़ाद के सबसे बड़े भाई शुकदेव, जो बदरका में ही पैदा हुए थे) पेट पालते थे। उनका यह वेतन बढ़कर बाद में आठ रुपये मासिक तक हो गया था। आज़ाद का जन्म भावरा में ही ही टूटी-फूटी बाँस के टट्टरों में हुआ था। पिता जी कुछ विशेष पढ़े-लिखे न थे। माता जी तो बिल्कुल निरक्षर ही थीं। आज़ाद बचपन से ही तेजस्वी, कर्मशील और नटखट थे। ग्राम में पास-पड़ोस के लड़कों में तो वे नेता स्वभावतः ही बन गये थे। अपने नटखटपने के कारण वे प्रायः अपने पिता के कोप-भाजन बनते थे। जिनकी चार सन्तानें मर चुकी हों ऐसे माता के वे लाडले थे ही। तेजस्वी



ब्राह्मण बालक और फिर संस्कृत पढ़ा-लिखा न हो! यह कैसे हो सकता है? एक दिन किसी बात पर पिता से मार खाकर आज़ाद घर से भाग निकले और इधर-उधर भटकते अन्ततः पढ़-लिख कर योग्य ब्राह्मण बनने के लिए वे काशी पहुँचे और एक क्षेत्र में व्याकरण पढ़ने लगे। उन दिनों सन 20-21 का सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था। बालक आज़ाद उसके प्रति आकर्षित हुए और बढ़ चढ़ कर काम करने लगे। नेताओं का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ। सत्याग्रह आन्दोलन में अपनी कम उम्र के कारण उन्हें बेटों की सज़ा मिली जो उन्होंने बड़ी बहादुरी से भुगती तथा

श्रीप्रकाश जी से उन्होंने ‘आज़ाद’ उपनाम पाया। सन् 20-21 का सत्याग्रह समाप्त हो जाने के बाद काशी में श्री मन्मथनाथ गुप्त आदि के सम्पर्क से वे गुप्त क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हुए। अमर शहीद पं. रामप्रसाद ‘बिस्मिल’ के नेतृत्व में उन्होंने काकोरी ट्रेन काण्ड में भाग लिया और सन् 1925 में काकोरी षडयन्त्र केस से फ़रार होकर झाँसी आये। झाँसी और ओरछे के बीच सातार नदी के किनारे पर एक कुटिया में वे हरिशंकर ब्रह्मचारी बन कर रहे। यहीं से उन्होंने दल के छिन्न-भिन्न सूत्रों के फिर से जोड़ लिया और क्रान्तिकारी दल के नेता के रूप में अमर शहीद भगतसिंह आदि से मिलकर उन्होंने उस दल का संगठन और संचालन किया जिसके प्रमुख कार्य लाहौर में लाला लाजपतराय पर लाठी चार्ज करने वाले ए.एस.पी. साण्डर्स का वध, देहली की धारा-सभा में बम विस्फोट तथा वायसराय की गाड़ी के नीचे बम विस्फोट करना थे। सन 1931 की फरवरी की 27 तारीख को वे इलाहाबाद के एल्फ्रेड पार्क में पुलिस से एकाकी युद्ध करते हुए शहीद हुए।

नोट: प्रिय पाठको! इस अंक में भी ‘क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षण माला’ की अगली कड़ी नहीं दे पाने के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। इस शृंखला को अगले अंक से पुनः जारी किया जायेगा।

भूल सुधार : प्रिय पाठको! मज़दूर बिगुल जून 2026 के लेख ‘क्यों लगातार गिर रहा है भारतीय रुपया?’ में पृष्ठ संख्या छ: कॉलम एक, पैरा तीन पर आयी पंक्ति “यानी ठोस मालों का उसका आयात ठोस मालों के उसके निर्यात से लम्बे समय से कम रहा है।” को “यानी ठोस मालों का उसका आयात ठोस मालों के उसके निर्यात से लम्बे समय से अधिक रहा है।” पढ़ें।

‘मज़दूर बिगुल’ के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

‘मज़दूर बिगुल’ के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अखबार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. ‘मज़दूर बिगुल’ की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।
2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।
3. अखबार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)
4. अखबार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे ‘बिगुल’ 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितियों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं।

नम्बर है : 8853476339

“बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।” – लेनिन

‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन माँगने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी ‘मज़दूर बिगुल’ से जुड़ सकते हैं : www.facebook.com/MazdoorBigul

‘मज़दूर बिगुल’ का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. ‘मज़दूर बिगुल’ व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. ‘मज़दूर बिगुल’ भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और ‘बिगुल’ देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. ‘मज़दूर बिगुल’ स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टियों के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्यवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर “कम्युनिस्टों” और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क्रतारों से क्रान्तिकारी भर्तों के काम में सहयोगी बनेगा।
5. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको ‘मज़दूर बिगुल’ का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

QR कोड व UPI

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400

पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ



UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सएप)

ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016, फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

मज़दूर-मेहनतकश साथियो! मोदी सरकार के खिलाफ़ देशभर में चल रहे छात्र-युवा आन्दोलन का साथ दो!

(पेज 1 से आगे)

के प्रति क्या है? वही जो एक फ़ासीवादी तानाशाहाना हुकूमत का होता है! छात्रों-युवाओं की जायज़ माँगों को पूरा करने और मसले का समाधान करने की बजाय यह सरकार उनपर लाठियाँ बरसवा रही है, उनपर आँसू गैस के गोले दाग रही है, उन्हें पेलेट गनों का निशाना बना रही है, जिन्हें आज तक कश्मीरी जनता और उत्तर-पूर्व की जनता पर इस्तेमाल किया जाता रहा था, उन्हें कीलें लगे डण्डों से मार रही है, शॉक बेटन से बिजली के झटके दे रही थी, उन्हें अपराधी और आतंकवादी घोषित कर रही है! यह बात भी स्वतंत्र मीडिया चैनलों और अखबारों में आ चुकी है कि दिल्ली पुलिस ने प्रदर्शनकारी लड़कियों के कपड़े तक फाड़े और उनके साथ बर्बर हिंसा की। अब इस बात के भी स्पष्ट प्रमाण हैं कि पुलिस ही जन्तर मन्तर पर पत्थर भरा ट्रक लायी थी और पत्थर फेंकने का काम और गाड़ियों को तोड़ने का काम भी उसने किया। यह हथकण्डा भी अब काफ़ी पुराना हो चुका है। सीएए-एनआरसी के खिलाफ़ चले आन्दोलन से लेकर हाल के नोएडा मज़दूर आन्दोलन तक में पुलिस द्वारा यही ग़ैर-क्रान्नी हरकतें बार-बार दुहरायी गयीं हैं। 20 जुलाई को संसद मार्च के दौरान दिल्ली पुलिस के साथ मिलकर सिविल ड्रेस में या बिना नेमप्लेट की वर्दी में छात्रों-युवाओं के विरुद्ध हिंसा करने में संघी गुण्डे भी भारी तादाद में शामिल थे। इन संघी गुण्डों को डण्डे लेकर चलने और खुलेआम हिंसा करने का लाइसेन्स शायद गृह मंत्री अमित शाह ने ही दिया है!

हालाँकि फ़िलहाल ऐसा कोई भी फ़ासीवादी हथकण्डा काम आ नहीं रहा है। अपने पुराने ‘टूलकिट’ से वही सड़े-गले, जंग लगे औज़ार यानी कि पाकिस्तान लिंक, फॉरिन फण्डिंग, असामाजिक “बाहरी” तत्व आदि भी अब काम नहीं आ रहे हैं! सच तो यह है कि मोदी सरकार और स्वयं प्रधानमंत्री मोदी के आत्मविश्वास का बाहरी आवरण भी अब जवाब देने लगा है और भाजपा के हाथ-पैर फूल रहे हैं। यह अनायास नहीं है कि जगह-जगह भाजपा के विधायक और नेता जनता के गुस्से का निशाना बन रहे हैं। भाजपाई अपनी पार्टी का झण्डा, बैनर लेकर कहीं बाहर घूमने की हालत में नहीं हैं।

यह बात भी सच है कि इस छात्र-युवा आन्दोलन का तात्कालिक मुद्दा भले ही नीट पेपर लीक, छात्रों द्वारा की जा रही आत्महत्याएँ और एनटीए जैसे भ्रष्ट संस्थान द्वारा छात्रों के भविष्य के साथ किया जा रहा खिलवाड़ है, लेकिन अब यह आन्दोलन महज इस मुद्दे तक सीमित नहीं रहा है। यह पिछले बारह सालों में मोदी सरकार के

गरीब-विरोधी, मज़दूर-विरोधी, छात्र-विरोधी, स्त्री-विरोधी, मुसलमान-विरोधी, दलित-विरोधी रवैये के खिलाफ़ इकट्ठा हुआ जनता का गुस्सा, असन्तोष और रोष है जो सड़कों पर स्वतःस्फूर्त तरीके से फूट पड़ा है। यह आन्दोलन इस बात की ही अभिव्यक्ति है कि अब देश की जनता के सब्र का प्याला छलक चुका है!

पिछले 12 वर्षों में मोदी सरकार ने अपनी पूँजीपरस्त नीतियों को जारी रखते हुए एक के बाद एक जन-विरोधी क्रदम उठाये। 2014 में सत्तासीन होते ही नरेन्द्र मोदी द्वारा अपने पूँजीपति आकाओं की “मन की बात” सुनते हुए और मज़दूरों-मेहनतकशों के अधिकारों पर हमला बोलते हुए 4 लेबर कोड लाये गये जिन्हें पिछले साल नवम्बर में सरकार द्वारा लागू भी कर दिया गया। ग्रामीण मज़दूरों के हक़ों पर चोट करते हुए और धनी किसानों-पूँजीवादी फ़ार्मरों की लम्बे समय से चली आ रही माँग की तामील करते हुए मनरेगा के क्रानून को खत्म कर दिया गया ताकि ग्रामीण व खेतिहर मज़दूरों की मोलभाव की क्षमता ही कमज़ोर कर दी जाये। उसके बाद कभी नोटबन्दी करके, कभी ऑक्सीजन सिलिण्डरों और मास्कों के लिए, तो कभी अपनी नागरिकता साबित करने के लिए लोगों को लाइनों में खड़ा कर दिया गया। सच तो यह है कि मोदी सरकार और गोदी मीडिया के सभी हवाई दावों के बावजूद देश में कुछ भी “चंगा नहीं सी”!

हमारा देश इस वक़्त एक अभूतपूर्व संकट के दौर से गुज़र रहा है। बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार और आर्थिक असमानता ने पिछले सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं। पेट्रोल-डीज़ल-रसोई गैस के दाम आसमान छू रहे हैं और इनकी ज़िम्मेदार पूँजीपतियों की चहेती मोदी सरकार ही है। बेरोज़गारी के ऐसे हालात पैदा हो गये हैं कि क़रीब 30 करोड़ लोग आज बेरोज़गार या अर्द्धबेरोज़गार हैं। 2014 में हर साल दो करोड़ रोज़गार देने का झाँसा देकर वोट माँगने वाले नरेन्द्र मोदी के राज में करोड़ों लोग अपने रोज़ी-रोज़गार से हाथ धो चुके हैं। देश में 50 करोड़ से भी ज़्यादा लोग अनौपचारिक क्षेत्र में 12-12 घण्टे फ़ैक्ट्रियों-कारखानों, खेतों-खलिहानों और खानों-खदानों में 8-10 हजार रुपये में ठेका या दिहाड़ी पर खटने को मजबूर कर दिये गये। इन 12 वर्षों में श्रम की लूट को आसान बनाकर धन्नासेठों की तिजोरियाँ भरने का प्रबन्ध मोदी सरकार ने बखूबी किया है। नोटबन्दी, जीएसटी और कोरोना कालीन कुप्रबन्धन ने विशेष तौर पर असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के पेट पर लात मारी। जनता की कमाई पर खड़े सरकारी उपक्रमों का निजीकरण कर पूँजीपतियों को सौंपा जा रहा है। जंगल, पहाड़, द्वीप समेत

तमाम प्राकृतिक संसाधनों को अम्बानियों-अडाणियों की जमात को कौड़ियों के दाम बेचा जा रहा है।

पिछले 12 सालों में शिक्षा व्यवस्था को भी व्यवस्थित तरीके से चौपट किया गया है। मोदी सरकार के राज में शिक्षा के बाज़ारीकरण और साम्प्रदायिकीकरण की रफ़्तार अद्वितीय रही है। नयी शिक्षा नीति-2020 इसी मंसूबे को क्रान्नी और नीतिगत जामा पहनाने वाला दस्तावेज़ है। शिक्षा का सरकारी तंत्र योजनाबद्ध तरीके से ख़त्म किया जा रहा है। प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा को बाज़ारू माल बना दिया गया है। जिसके पास पैसा है वे बेहतर स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों व तकनीकी शिक्षण संस्थानों तक पहुँच रखते हैं। जिनके पास पैसा नहीं है वे अशिक्षित रहकर या स्कूल से ड्रॉपआउट होकर अकुशल या अर्द्धकुशल मज़दूरों की जमात में शामिल होने या ज़्यादा से ज़्यादा आईटीआई या पॉलीटेक्निक से शिक्षित होकर कुशल मज़दूरों की जमात में शामिल होने और ठेका प्रथा के तहत खटने के लिए बाध्य है। शिक्षा पर होने वाले सरकारी खर्च में कटौती के मामले में मोदी सरकार ने पिछली सभी सरकारों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। यही नहीं, पाठ्यक्रमों का भी संस्थाबद्ध तरीके से फासीवादीकरण किया जा रहा है। वैज्ञानिक और तार्किक चेतना, संवेदनशीलता और इतिहासबोध से लैस शिक्षा प्रणाली को दरकिनार कर मिथकों को इतिहास और इतिहास को मिथक बनाया जा रहा है। आम मेहनतकश अवाम के बच्चों के दिमागों में साम्प्रदायिकता और धार्मिक कट्टरपन्थ का ज़हर घोलने का काम जो पहले संघ की शाखाओं और संघ प्रायोजित विद्यालयों और महाविद्यालयों में होता था, आज वही काम फ़ासीवादी ताकतों द्वारा राज्य मशीनरी का इस्तेमाल कर शिक्षा तंत्र के ज़रिये कई गुना तेज़ी से किया जा रहा है। एनटीए जैसी भ्रष्ट संस्थान का अस्तित्व में आना, पेपर लीक जैसी परिघटनाओं का आम प्रवृत्ति बन जाना, परीक्षा घोटाले आदि इसी वृहद योजनाबद्ध फ़ासीवादी मुहिम की देन हैं। इसके अलावा पिछले 12 सालों में मोदी सरकार ने भ्रष्टाचार के भी सभी कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये। बात-बात पर “सदाचार”, “संस्कृति” और “संस्कार” की बीन बजाने वाली भाजपा ने भ्रष्टाचार के नये रिकॉर्ड स्थापित कर दिये। ‘न खाऊँगा न खाने दूँगा’ के जुमले की पोल खुल चुकी है और खाना-खिलाना दोनों ही ज़ोरों पर रहा है। राफ़ेल सौदे, पीएम केय़र, व्यापम घोटाले, एनपीए घोटाले से लेकर अडाणी घोटाले की पूरी परिघटना इसके जीते-जागते प्रमाण हैं। सदाचार

के इन अलम-बरदारों ने तो भ्रष्टाचार के मामले में राम मन्दिर तक को नहीं छोड़ा जिसकी बैसाखी के बूते भाजपा ने सत्ता पर चढ़ाई की थी! सच्चाई यह है कि देश का विकास भले ही ‘निल बटे सन्नाटा’ रहा हो, मोदी राज में भाजपाइयों और इनके चहेते अमीरज़ादों-धन्नासेठों का विकास आसमान छू रहा है! इसीलिए तो पूँजीपति, धन्नासेठ, बड़े व्यापारी, धनी किसान-भूस्वामी भाजपा पर नोट बरसा रहे हैं! दरअसल “राष्ट्रवादी” भाजपा के घोटाले भी “राष्ट्रवादी” हैं और इसलिए इनपर सवाल उठाने वाले राष्ट्र-विरोधी करार दे दिये जाते हैं!

इन 12 वर्षों में मोदी-शाह शासन द्वारा एक तरफ़ तो शिक्षा, चिकित्सा, रोज़गार के अवसरों को समाप्त करके आम जनता के हितों पर चौतरफ़ा हमले बोले गये, तो दूसरी तरफ़ इन हमलों के खिलाफ़ एकजुट होने से रोकने के लिए आर.एस.एस. और भाजपा ने देश की अवाम को साम्प्रदायिकता, हिन्दू-मुसलमान और “राष्ट्रवाद” के फ़र्ज़ी मसलों में उलझाकर रखा। भाजपा सरकार द्वारा इस उन्माद के माहौल को बनाये रखने के लिए एनआरसी-सीएए जैसी साज़िश से लेकर अयोध्या, काशी, मथुरा के मामलों और ‘लव जिहाद’, हिजाब, गोरक्षा आदि के मुद्दों को हवा दी जाती रही है। लेकिन काठ की हाँडी बार-बार नहीं चढ़ती! देश की जनता भी अब यह समझने लगी है कि वास्तविक मुद्दों से ध्यान भटकाने के लिए और जनता के असन्तोष को ग़लत दिशा देने के लिए ही जातिगत-धार्मिक-अन्धराष्ट्रवादी उन्माद का माहौल तैयार किया जाता रहा है ताकि लोग अपने असली सवालों पर एकजुट न हो सकें।

मोदी सरकार की पूँजीपरस्त नीतियों का ही नतीजा है कि जहाँ देश की आम मेहनतकश आबादी दाने-दाने को मोहताज बना दी गयी है वहीं धनिक वर्गों के मुनाफ़े और आमदनी में कोई कमी नहीं आयी है। इन 12 सालों में अमीरी-गरीबी की खाई लगातार बढ़ती गयी है। मोदी राज में पूँजीपतियों की सम्पत्ति और ऐयाशियों में बेतहाशा वृद्धि हुई है। ऑक्सफ़ैम इण्डिया की एक रिपोर्ट के अनुसार साल 2021 में भारत में शीर्ष 1% आबादी के पास कुल सम्पत्ति का 40.5% से अधिक हिस्सा था, जबकि नीचे के 50% लोगों के पास कुल सम्पत्ति का लगभग 3% था। आज 2026 में यह खाई और बड़ी हो गयी है। यानी देश के अमीर वर्ग गरीब मेहनतकश जनता व छात्रों-युवाओं के आँसुओं के समन्दर के बीच अपनी ऐयाशी और ऐश्वर्य की मीनारें खड़ी करते रहे। इसी दौरान नेताशाही-नौकरशाही और बड़े सिविल व सेना अधिकारियों के ऐशों-आराम, वेतन

भत्तों और रंगरलियों में भी अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई।

इसके साथ ही भाजपा और संघ परिवार ने एक लम्बी प्रक्रिया में चुनाव आयोग, एनफ़ोर्समेण्ट डाइरेक्टोरेट (ईडी) से लेकर सीबीआई जैसी संस्थाओं में आन्तरिक घुसपैठ करके इन्हें अपना जेबी माल बना लिया है। पुलिस और सशस्त्र बलों में संघ परिवार की व्यवस्थित घुसपैठ पर भी तमाम रपटें सामने आ चुकी हैं। न्यायपालिका का फ़ासीवादीकरण भी अपनी पूर्णता हासिल करने की कगार पर है। आज समूची जनता इस बात को जानती है कि देश की न्याय व्यवस्था किसके इशारों पर काम कर रही है! पहले सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने देश के बेरोज़गार युवाओं को कॉकरोच बोला। अब 20 जुलाई को जन्तर-मन्तर पर छात्रों-युवाओं पर दिल्ली पुलिस और आरएएफ़ द्वारा किये गये बर्बर लाठी चार्ज व दमन पर दायर याचिका पर उन्होंने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता से कहा कि उनके पास पुलिस द्वारा दमन, लड़कियों और बच्चों को मारने, उनके कपड़े फाड़ने के वीडियो देखने का वक़्त नहीं है, उनका समय न बरबाद किया जाये! तो यह है न्याय और संविधान की हिफाज़त करने वालों का असली चेहरा!

आज यह बात कौन नहीं जानता है कि पहले ईवीएम घोटाले के ज़रिये, मतगणना में हेरफेर करके और अब एसआईआर की साज़िश के तहत भाजपा सत्ता में बने रहने के अपने इन्तज़ामात पक्के कर रही है। बंगाल से लेकर बिहार तक और अब देश के अलग-अलग राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में जनता को फिर से एसआईआर के बहाने लाइनों में खड़ा किया जा रहा है और लोगों को अपनी नागरिकता साबित करने के लिए मजबूर किया जा रहा है। यानी एसआईआर का मक़सद है एनआरसी को चोर दरवाज़े से लागू करना और साथ ही सभी ऐसे मतदाताओं का नाम मतदाता सूची से काटना जो भाजपा के खिलाफ़ वोट कर सकते हों, चाहे वे मुसलमान हों, दलित हों, गरीब मेहनतकश औरतें हों, आदिवासी हों या फिर पिछड़े वर्ग।

कुलमिलाकर कहें तो जितनी बेहाल देश की जनता महँगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, महँगी होती शिक्षा-चिकित्सा, बढ़ती आर्थिक असमानता और सामाजिक असुरक्षा से आज है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। इस क्रूर जनविरोधी सरकार आज तक भारत के इतिहास में शायद ही कोई रही हो। दिल्ली और देश की सड़कों पर उमड़ा छात्रों-युवाओं का आन्दोलन दरअसल इन्हीं बदतर होते हालात के खिलाफ़ (पेज 4 पर जारी)

मज़दूर-मेहनतकश साथियो! मोदी सरकार के खिलाफ़ देशभर में चल रहे छात्र-युवा आन्दोलन का साथ दो!

(पेज 3 से आगे)

जनता की बगावत है। देश के छात्र-युवा, उनके माता-पिता, उनके समर्थन में उतरे अलग-अलग तबकों के लोग इस बात का सबूत दे रहे हैं कि अब बस बहुत हुआ! अब हमारे सब्र का प्याला छलक चुका है! पुलिसिया दमन का डर दिखाकर हम चुप नहीं बैठने वाले! आज भाजपा सरकार इसी वजह से बुरी तरह डरी-घबराई हुई है। वह इसलिए डरी हुई है क्योंकि जनता ने डरना छोड़ दिया है!

परीक्षा घोटालों और एनटीए की धाँधली से शुरू हुआ छात्रों-युवाओं का आन्दोलन आज स्वतःस्फूर्त तरीके से एक व्यापक जनान्दोलन की शकल ले रहा है। इस मौके को देश के मज़दूर-मेहनतकशों को भी पहचानना होगा और आने वाले समय के संघर्ष के लिए हमें भी अपनी कमर कसनी होगी। आम तौर पर, हम मज़दूरों के बीच सत्ताधारी अपने विचारों की घुसपैठ करके यह बताने का काम करते हैं कि शिक्षा,

चिकित्सा या किसी अन्य जनवादी-नागरिक अधिकार से जुड़ा मसला हमारा मसला नहीं है! मज़दूरों को तो सिर्फ़ मज़दूर मसलों पर ही बात करनी चाहिए, वैसे ही जैसे छात्रों को सिर्फ़ छात्र मसलों पर! इससे बड़ा लतीफ़ा कोई और नहीं हो सकता! शिक्षा का मसला भी मज़दूर वर्ग का मसला है और हर छात्र को मज़दूरों के अधिकारों की लड़ाई में शामिल होना चाहिए और छात्र मज़दूरों की लड़ाई में शामिल हुए भी और नोएडा के मामले में जेल भी भेजे गये। मज़दूरों को छात्रों के लिए आउटसाइडर बता दिया जाता है और छात्रों को मज़दूरों के लिए बस आर.एस.एस. और भाजपा सबके इनसाइडर हैं, वे किसी के बारे में भी बोल सकते हैं, किसी को भी ग़लत या सही ठहरा सकते हैं, किसी पर भी हमला कर सकते हैं, किसी को भी देशद्रोही करार दे सकते हैं! यह ‘इनसाइडर-आउटसाइडर’ का खेल शासक वर्ग बख़ूबी खेलना जानते हैं। हमें इनके

धोखे में कभी नहीं आना चाहिए और हर संघर्ष में व्यापक छात्र-युवा-मज़दूर एकता क़ायम करने की तरफ़ बढ़ना चाहिए। वैसे भी क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग केवल अपनी संकीर्ण आर्थिक माँगों के लिए नहीं लड़ता। वह समूची मानव-मुक्ति और पूँजीवाद से आज़ादी के लिए लड़ता है। नतीजतन, क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को हर जन-संघर्ष में भागीदारी करनी चाहिए, उसे क्रान्तिकारी दिशा देनी चाहिए चाहे वह छात्रों का हो, युवाओं का हो, स्त्रियों का हो या किसी भी दमित व शोषित आबादी का हो। आज एक ऐसा मौक़ा ही हमारे सामने उपस्थित है। संघ परिवार और मोदी सरकार द्वारा लम्बे समय से लोगों को झूठे, फ़र्जी मसलों के शोर में उलझाया जाता रहा है। लेकिन आज जनता इस बात की सच्चाई समझ रही है। वह स्वतःस्फूर्त तरीके से न्याय के लिए सड़कों पर उतर रही है। चुप्पी का टूटना स्वागत-योग्य है लेकिन एक सचेत शासक वर्ग और उसके

सुनियोजित शोषण व दमन के तंत्र के विरुद्ध न्याय का संघर्ष भी अन्ततः विजयी तभी हो सकता है, जब वह भी सचेत हो, उसके पास भी नेतृत्व, विचार और कार्यक्रम हो, योजना हो, अनुशासन हो। इसलिए स्वतःस्फूर्तता से आगे कार्यक्रम, नेतृत्व और योजनाबद्धता, यानी चेतनासम्पन्नता की ओर बढ़ना होगा।

इसलिए मौजूदा आन्दोलन में मज़दूरों और मेहनतकशों को भी सचेतन तौर पर हिस्सेदारी करनी चाहिए। इसके साथ ही मौजूदा आन्दोलन के माँगपत्रक को भी विस्तारित करने की आवश्यकता है। सवाल केवल किसी एक धर्मेन्द्र प्रधान के इस्तीफ़े का नहीं है। अगर मौजूदा शिक्षा व्यवस्था बनी रही, तो धर्मेन्द्र प्रधान की जगह यदि कोई और भी आ जाये, तब भी आमूलगामी तौर पर कुछ भी नहीं बदलेगा। शिक्षा व्यवस्था भी किसी टापू पर मौजूद नहीं होती है, बल्कि समूची राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था का

हिस्सा होती है। मौजूदा शिक्षा व्यवस्था मौजूदा फ़ासीवादी निज़ाम द्वारा खड़ी की गयी है। इसलिए हमें समूची शिक्षा व्यवस्था का प्रश्न उठाने के साथ-साथ मौजूदा फ़ासीवादी निज़ाम का सवाल भी उठाना होगा। हमें इस आन्दोलन को फ़ासीवाद-विरोधी सचेतन क्रान्तिकारी आन्दोलन की दिशा की ओर आगे बढ़ाना होगा।

लेकिन यह अपनेआप नहीं होगा। इसके लिए एक संगठित क्रान्तिकारी नेतृत्व का निर्माण करना होगा जो कि सुनियोजित व सुव्यवस्थित कार्यक्रम, क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना, सूझबूझ व अनुशासन और क्रान्तिकारी रणनीति और रणकौशल से लैस हो। अगर हमारा मक़सद केवल भड़़ास निकालना या गुस्सा ज़ाहिर करना नहीं है, बल्कि एक संगठित, व्यवस्थित, योजनाबद्ध संघर्ष खड़ा कर परिवर्तन करना है तो हमें इस दिशा में इसी वक़्त से अपनी तैयारियाँ शुरू करनी होंगी।

दिल्ली सरकार के स्वास्थ्य विभाग में 600 करोड़ रुपये की लूट!

इलाज के बग़ैर दम तोड़ते लोग और करोड़ों के घोटाले में मशगूल दिल्ली सरकार व अस्पताल प्रशासन!!

● नौरीन

जैसे जब घाव पक जाता है तो उसका मवाद धीरे-धीरे बाहर आने लगता है, ठीक वैसे ही पिछले 12 सालों में भाजपा सरकार ने जो भ्रष्टाचार किया है अब धीरे-धीरे लोगों के सामने आ रहा है। हाल ही में देश की राजधानी दिल्ली के स्वास्थ्य विभाग में 600 करोड़ रुपये से ज़्यादा का घोटाला सामने आया है। दिल्ली के स्वास्थ्य विभाग में हुए करोड़ों के घोटाले की बात करें तो ‘जनसत्ता’ अख़बार की एक रिपोर्ट के अनुसार पोर्टेबल एक्स-रे मशीनों को 33 लाख रुपये प्रति मशीन के हिसाब से ख़रीदा गया जबकि बाज़ार में उसकी क़ीमत 10 लाख रुपये प्रति यूनिट है। इस प्रकार लगभग 100 करोड़ रुपये का घपला किया गया।

इसी तरह अस्पताल के जिस लिनेन और बेडशीट की क़ीमत लगभग 150 रुपये प्रति पीस है उसे 450 रुपये प्रति बेडशीट के हिसाब से ख़रीदा गया। इस तरह 25 करोड़ के बेडशीट के लिए कुल 75 करोड़ रुपये का भुगतान किया गया। इसके अलावा 50 लाख ओआरएस पाउच जिसकी क़ीमत लगभग 2.5 रुपये प्रति पाउच थी उसे 15 रुपये प्रति पाउच की दर से ख़रीदा गया। ओआरएस, केनुला, टॉर्के, दस्ताने आदि की ख़रीद में लगभग 300 करोड़ रुपये का घोटाला किया गया।

यह घोटाला मुख्य रूप से मनपसन्द कम्पनियों को टेण्डर देकर व सामानों की ख़रीदारी में हेर-फेर करके किया

गया है। इस मामले में अब तक तीन लोगों को गिरफ़्तार किया गया। मुख्यमंत्री रेखा गुप्ता का कहना है कि पूरे मामले की जाँच की जा रही है और दोषियों को छोड़ा नहीं जायेगा। लेकिन सवाल यह है कि दिल्ली सरकार के स्वास्थ्य विभाग में करोड़ों रुपये का घोटाला होता रहा और इसकी भनक दिल्ली के स्वास्थ्य मंत्रालय और मुख्यमंत्री को कैसे नहीं हुई? क्या यह महज़ संयोग है या फिर हमेशा की तरह कुछ लोगों की गिरफ़्तारी करके असली दोषियों को बचाया जा रहा है?

दिल्ली में स्वास्थ्य व्यवस्था की दयनीय स्थिति

एक रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली के वर्धमान महावीर मेडिकल कॉलेज, सफ़दरजंग अस्पताल, अटल बिहारी वाजपेयी इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंसेज़, डॉ राम मनोहर लोहिया अस्पताल और लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज में डॉक्टरों के 21 प्रतिशत पद और नर्सों के 13.4 प्रतिशत पद खाली हैं। इन अस्पतालों में डॉक्टरों के कुल 1,471 पद स्वीकृत हैं, जिनमें से 309 खाली हैं। वहीं, नर्सों के 5,499 स्वीकृत पदों में से 739 पद भरे नहीं गये हैं। सफ़दरजंग अस्पताल में डॉक्टरों के रिक्त पदों की संख्या 19 प्रतिशत है, वहीं राम मनोहर लोहिया और लेडी हार्डिंग अस्पताल में क़रीब 23 प्रतिशत पद खाली हैं। लेडी हार्डिंग अस्पताल में क़रीब 19 प्रतिशत नर्सिंग स्टाफ के पद खाली हैं।

दिल्ली की स्वास्थ्य व्यवस्था पहले से ही वेण्टिलेटर पर है! सरकारी अस्पतालों की स्थिति लचर है। पर्याप्त संख्या में डॉक्टर नहीं हैं। कई अस्पतालों में ज़रूरी मशीनें नहीं हैं। लोग घण्टों लाइनों में खड़े-खड़े अपना दम तोड़ देते हैं। समय से इलाज नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में रेखा गुप्ता की भाजपा सरकार लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैया कराने की बजाय अपनी नाक के नीचे पैसे की चोरी करवा रही है। घोटाले पर घोटाले कर रही है। लोग इलाज के बग़ैर मरते रहें लेकिन नेता-मंत्रियों के बैंक बैलेंस में कमी नहीं आनी चाहिए!

राम नाम की लूट मची है लूट सके तो लूट!

यह मुहावरा भाजपा सरकार के शासनकाल पर बिल्कुल सटीक बैठ रहा है। जनता को ‘राम नाम’ का पाठ पढ़ाने वाली मोदी सरकार की देखरेख में राम मन्दिर से करोड़ों का चन्दा चोरी हो जाता है लेकिन यह ‘रामनामी’ सरकार चूँ तक नहीं करती। देश की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी को दो वक़्त की रोटी तक ठीक से नसीब नहीं हो रही लेकिन मोदी सरकार उन्हें देशहित में त्याग करने का ज्ञान दे रही! एक तरफ़ देश के छोटे किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं वहीं दूसरी तरफ़ 14 करोड़ की सम्पत्ति वाले "बेहद ग़रीब" केन्द्रीय कृषि राज्यमंत्री को खेती के लिए 99 लाख रुपये की सब्सिडी मिल जाती है! यानी एक तरफ़ देश की जनता अपनी बुनियादी ज़रूरतों

के लिए तरस रही है, वहीं दूसरी तरफ़ मोदी सरकार और उसके नेता-मंत्री ऐयाशी के महासागर में गोते लगा रहे हैं। यह वही फ़ासीवादी भाजपा है जिसने 'बहुत हुआ भ्रष्टाचार अबकी बार भाजपा सरकार' 'न खाऊँगा न खाने दूँगा' जैसे नारे दिये थे। लेकिन एक-एक करके उनके नारों की हक़ीक़त सामने आती जा रही है। यही है इस घोर जनविरोधी पार्टी और सरकार का असली चाल-चेहरा और चरित्र! बात-बात पर ‘सदाचार’ व ‘संस्कृति’ की डींग हाँकने और ‘‘धर्म-ध्वजा’’ लहराने वालों की असलियत सबके सामने हैं।

न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी!

एक तरफ़ मोदी सरकार के शासनकाल में घोटालों की लिस्ट लगातार लम्बी होती जा रही है, वहीं दूसरी तरफ़ अपने घोटालों को छुपाने के लिए भाजपा ने एक ख़ास ‘टेक्नीक’ अपनायी है। इसे इतेफ़ाक़ कहें या सोची-समझी रणनीति कि जब भी कोई घोटाला सामने आता है तब या तो उसकी फ़ाइल ग़ायब हो जाती हैं या फिर जल जाती हैं! पश्चिम बंगाल चुनाव के बाद लोगों ने ईवीएम पर सवाल उठाये थे। उसके बाद आग लगने से सारे ईवीएम जलकर राख हो गये! जब छात्र परीक्षाओं में घोटाले की बात रहे थे ठीक उसी समय शिक्षा मंत्रालय में उसी कमरे में आग लगती है जहाँ फ़ाइलें रखी जाती हैं! अभी हाल ही में राम मन्दिर में चन्दा चोरी करने का मामला सामने आया तो वहाँ भी 45 दिन पहले का सीसीटीवी फुटेज ग़ायब

है! और अब दिल्ली के स्वास्थ्य विभाग में घोटाले से सम्बन्धित फ़ाइलें ग़ायब हैं! भाजपा सरकार सीधे तौर पर 'न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी' की तर्ज़ पर काम कर रही है।

मक़सद एकदम स्पष्ट है। पहले जनता के पैसे की चोरी करो। हज़ारों करोड़ों का घोटाला करो। उसके बाद फ़ाइलें ग़ायब करके सबूत मिटाओ। और जब घोटाले सामने आ जायें तब घड़ियाली आँसू बहाते हुए जाँच के नाम पर कुछ लोगों को बलि का बकरा बनाओ ताकि बड़े-बड़े नेता-मंत्री और असली गुनहगारों को बचाया जा सके।

दिल्ली में ‘‘सदाचारी’’ भाजपा की ‘‘डबल इंजन’’ की सरकार होने के बावजूद लोगों को बुनियादी सुविधाएँ नहीं मिल पा रही हैं। सरकार की असलियत जनता के सामने न आ जाये और लोग इन घोटालों के बारे में सरकार से सवाल न करें इसलिए जनता को कभी जाति-धर्म तो कभी मन्दिर-मस्जिद के नाम पर बाँटने की कोशिश की जाती है। आज हमें यह समझना होगा कि अगर हम सरकार से जवाब नहीं माँगेंगे तो ऐसे ही ये हमारे हक़ों को लूटती रहेंगी। हम लोग इलाज के बग़ैर लाइनों में खड़े होकर दम तोड़ने के लिए मजबूर होते रहेंगे और दूसरी तरफ़ इनकी तिजोरियाँ भरती रहेंगी। इसीलिए आज ज़रूरी है कि हम लोग अपने जीवन के वास्तविक मुद्दों मसलन शिक्षा, चिकित्सा और रोज़गार को लेकर एकजुट हों और संघर्ष करें।

'केचुआ' ने एसआईआर प्रक्रिया के ज़रिये दाँव पर लगा दी करोड़ों लोगों की ज़िन्दगी!

एसआईआर (SIR) चोर दरवाज़े से एन.आर.सी. (NRC) लागू करने का कुत्सित प्रयास है!

(पेज 1 से आगे)

पहला चरण बिहार की 7 करोड़ जनता को काग़ज़ खँगालने पर मजबूर करने से शुरू हुआ, उसके बाद दूसरे चरण में 13 राज्यों की 59 करोड़ जनता को कतारों में लगाया गया और अब 19 राज्यों में एसआईआर की इस प्रक्रिया को लागू किया जा रहा है! इस प्रकार धीरे-धीरे करके लोगों के अधिकारों को छीनने की शुरुआत की गयी ताकि लोगों का उसकी तरफ़ ध्यान न जाये और जब तक लोग इस बात को समझते कि एसआईआर क्या है और इसे क्यों करवाया जा रहा है, तब तक बहुत देर हो चुकी होगी! ठीक इसलिए सरकार द्वारा यह ज़ाहिर नहीं किया गया है कि एसआईआर की सूची से नागरिकता तय की जायेगी। असल में एसआईआर के नाम पर चोर दरवाज़े से एनआरसी को लागू किया जा रहा है!

यह प्रश्न तब और ज़्यादा सुर्खियों में आ गया जब हाल में विदेश मंत्रालय ने यह बयान दिया कि पासपोर्ट सिर्फ़ एक देश से दूसरे देश में यात्रा करने हेतु दस्तावेज़ है नाकि कोई नागरिकता का प्रमाण! क़ायदे से देखा जाये तो पासपोर्ट उन्हीं को दिया जाता है जो भारत के नागरिक हैं, ऐसे में सवाल उठता है कि भारत सरकार क्या उन लोगों को भी पासपोर्ट देती है जोकि भारत के नागरिक नहीं हैं? यदि ऐसा प्रावधान है कि पासपोर्ट उनको भी मुहैया करवाया जा रहा है जो भारत के नागरिक नहीं हैं, तब तो सरकार खुद ग़ैर क़ानूनी काम कर रही है! वैसे तो यदि पासपोर्ट को भी नागरिकता का प्रमाण मान लिया जाये, तो भी भारत की आबादी का 94% हिस्सा नागरिकता के दायरे से बाहर हो जायेगा! इस वाक्ये के बाद से लोगों के बीच यह प्रश्न बड़ा बन गया कि आखिर भारत का नागरिक है कौन? सभी लोग इस पर उहापोह की स्थिति में हैं कि किन काग़ज़ातों से साबित होगा कि कोई भारत का नागरिक है या नहीं? आज एक बड़ी आबादी के सामने राज्यविहीन होने का ख़तरा पैदा हो चुका है। इस वाक्ये के बाद से जनता में पैदा हुई चिन्ताओं को देख खुद सरकार भी उहापोह की स्थिति में आ गयी है कि आखिर जनता को ऐसा कौन सा झुनझुना थमाया जाये जिससे कि एन.आर.सी. को चोर दरवाज़े से घुसाने की इस प्रक्रिया की पोल-पट्टी न खुल पाये!

कीचड़ में कमल खिलाने हेतु केचुआ द्वारा शुरू की गयी एसआईआर की क़वायद सरकार संसद में और न्यायलय में इस बात का हवाला देते हुए एसआईआर को वाजिब ठहरा रही है कि मतदाता सूची के नवीनीकरण के लिए यह ज़रूरी क़दम है ताकि उन नामों को शामिल

किया जा सके जो नये मतदाता हैं और उनको हटाया जा सके जो पलायन कर चुके हैं या मृत हो चुके हैं। लेकिन वही भाजपा चुनावी रैलियों में भाषण देते हुए यह कहती है कि एसआईआर से सारे ग़ैर क़ानूनी तरीक़ों से रह रहे अप्रवासी या “बांग्लादेशी घुसपैठियों” की पहचान कर उन्हें निकाल बाहर किया जायेगा। अब किस बात को सच माना जाये? दस मुँह से दस बातें करने वाली फ़ासीवादी भाजपा सरकार का असल मक़सद इनमें से कुछ भी नहीं है! वैसे अब एसआईआर की प्रक्रिया पर सर्वोच्च न्यायलय की “न्याय” की मोहर लग चुकी है यह तर्क देते हुए कि चुनाव आयोग के पास यह अधिकार है की वह मतदाता सूची का नवीनीकरण करे। “न्याय” की यह मोहर लगने से केचुआ द्वारा शुरू की गयी एसआईआर की प्रक्रिया को वैधीकरण मिल चुका है और मोदी सरकार के (कु)तर्क का पलड़ा भारी पड़ रहा है। लेकिन हाल में संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिवेदकों ने एसआईआर प्रक्रिया में अल्पसंख्यक समुदाय के साथ हो रहे भेदभाव पर प्रश्न खड़ा किया और सरकार से जवाब माँगा। मोदी सरकार ने संयुक्त राष्ट्र की इस बात को सिरे से खारिज कर दिया है। एसआईआर को लागू करने के पीछे का असल मक़सद क्या है, इसे जानने के लिए हमें ज़मीनी हक़ीकत से रूबरू होना होगा। पहली बार एसआईआर को लागू करने के वक़्त फ़ासीवादी सरकार ने इसके पीछे के मक़सद को एक वाक्यांश के ज़रिये बताया था - डिटेक्ट, डिलीट, डिपोर्ट (Detect, Delete and Deport) यानी ‘पता लगाओ, हटाओ और निकाल बाहर करो’! ज़ाहिर है कि यहाँ किसे हटाने और निकाल बाहर करने की बात की जा रही है। “राज्य द्वारा संचालित इस चुनावी प्रक्रिया” के ज़रिये एक धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय को हटाया जा रहा है और

इसकी चपेट में न सिर्फ़ मुसलमान आबादी आ रही है बल्कि ग़रीबों, मज़दूरों, दलितों और महिलाओं की एक बड़ी संख्या भी इसकी चपेट में आ रही है। ज्ञात हो कि बंगाल में हुए मतदाता सूची के विशेष निरीक्षण के बाद जितने नाम सूची से हटाये गये उनमें से 70% मुस्लिम थे और 51% महिलाएँ। बंगाल के नन्दीग्राम निर्वाचन क्षेत्र में हटाये गये मतदाताओं में से 95% मुसलमान थे, जबकि उस क्षेत्र के कुल मतदाताओं में इनकी संख्या सिर्फ़ 25% है। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि यह विशेष पुनर्निरीक्षण क्यों करवाया जा रहा है! अल्पसंख्यक आबादी के एक बड़े हिस्से को यह फ़ासीवादी सरकार अपने निशाने पर ले चुकी है। लेकिन यह तय है कि इसकी ज़द में हर धर्म और जाति की ग़रीब आबादी आयेगी! बंगाल में हुए एसआईआर के बाद भाजपा की अप्रत्याशित जीत एक और इशारा कर रही है। ज्ञात हो कि बंगाल विधान सभा के 44 सीटों में भाजपा की जीत का अन्तर मतदाता सूची से हटाये गये मतदाताओं की संख्या से कम था! ज़ाहिर है कि चुनावों में अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए एसआईआर की पूरी प्रक्रिया को इस तरीक़े से लागू किया जा रहा है जिससे कि जिन विधानसभा क्षेत्रों की जो आबादी मोदी सरकार के पक्ष में नहीं है, उन्हें सूची से बाहर किया जा सके! लेकिन आप घबराइए मत! क्योंकि भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था अभी भी क़ायम है! पहले भी जनता तय करती थी कि कौन सत्ता में रहेगा और अभी भी जनता ही तय करेगी कि कौन सत्ता में रहेगा, फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि कौन सी जनता तय करेगी, यह तय करने का अधिकार भाजपा सरकार को है! आपको बताते चलें कि अभी तक की एसआईआर प्रक्रिया के दौरान 12 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में

मतदाता सूची से लगभग 5.2 करोड़ नाम हटाये गये हैं। अकेले बंगाल में 91 लाख मतदाताओं के नाम हटा दिये गये हैं। इनमें से 27 लाख लोग बंगाल चुनाव में वोट नहीं दे सके और उनके रजिस्ट्रेशन के आवेदनों पर सुनवाई करने वाले ट्रिब्यूनल ने अभी तक कोई फ़ैसला नहीं सुनाया है। अब तीसरे चरण में 19 राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों में एसआईआर की प्रक्रिया शुरू की गयी है जोकि अभी भी जारी है। हर जगह घर-घर जाकर निरीक्षण करने वाले बीएलओ के ऊपर कामों का बोझ बहुत बढ़ चुका है। कई जगह बीएलओ खुद इस माँग को लेकर हड़ताल पर बैठ चुके हैं कि निरीक्षण करने की समयावधि को बढ़ाया जाये। जल्दबाज़ी में हो रहे इस निरीक्षण में पूरी सम्भावना है कि कई लोगों के नाम सूची से छूट जाएँ। यहाँ तक कि फ़ॉर्म भरने की प्रक्रिया में नाम के एक अक्षर में भी यदि अन्तर आ रहा है, तो वह फ़ॉर्म अवैध क़रार दे दिया जा रहा है। वहीं निरीक्षण करने की पूरी प्रक्रिया में बीएलओ के अलावा राजनीतिक पार्टियों के कार्यकर्ताओं को भी शामिल किया जा रहा है। ज़्यादातर जगहों पर भाजपा ने अपने लोगों को इस प्रक्रिया में सक्रिय किया है ताकि चुनिन्दा तरीक़े से मुस्लिम समुदाय के लोगों को सूची से हटाने का पूरा प्रयास किया जा सके। पिछले दो चरणों के एसआईआर में यही चीज़ देखने को मिली है और अभी भी 19 राज्यों में चल रही इस प्रक्रिया में यही चीज़ हो रही है! एसआईआर के पहले दो चरणों में, जिनमें 13 राज्य और केन्द्र शासित प्रदेश शामिल थे, लगभग 59 करोड़ मतदाताओं को काग़ज़ जुटाने की इस जहोज़हद से गुज़रना पड़ा। इस प्रक्रिया में 6.3 लाख से ज़्यादा बीएलओ और पार्टियों द्वारा नियुक्त 9.2 लाख एजेण्ट शामिल थे, फिर भी इस प्रक्रिया को ढंग से अंजाम नहीं दिया जा सका! नतीजा

यह कि 59 करोड़ मतदाताओं में से 5.2 करोड़ लोगों को मतदाता सूची से बाहर कर दिया गया। अब ज़रा सोचिए कि अभी जारी तीसरे चरण में 36.73 करोड़ आबादी में से कितने लोग मतदाता सूची से बाहर किये जायेंगे! एक अनुमान के अनुसार एसआईआर की क़वायद के बाद पूरे देश में क़रीब 10 करोड़ लोग मतदाता सूची से बाहर किये जा सकते हैं! बाहर किये गये मतदाताओं को किस आधार पर सूची में शामिल नहीं किया जा रहा है, इसकी भी जानकारी कहीं नहीं दी गयी है। हालाँकि अप्रैल 2026 में सुनवाई के दौरान, सर्वोच्च न्यायालय के जस्टिस जॉयमाल्या बागची ने कहा था कि ऐसा प्रतीत हो रहा है कि पश्चिम बंगाल ने “लॉजिकल डिसक्रेपेंसी” (तार्किक विसंगति) की एक और कैटेगरी शुरू की है और उसके आधार पर लोगों को मतदाता सूची में शामिल करने या नहीं करने का फ़ैसला किया जा रहा है। एसआईआर प्रक्रिया में “तार्किक विसंगतियों” का तर्क पश्चिम बंगाल के एसआईआर के दौरान स्पष्ट हो चुका था कि वहाँ “लॉजिकल डिसक्रेपेंसी” (तार्किक विसंगति) की एक अलग कैटेगरी शुरू की गयी जिसके आधार पर तय किया जा रहा है कि कौन मतदाता सूची में रहेगा और कौन नहीं। यही प्रक्रिया एसआईआर के तीसरे चरण में अपनायी जा रही है। और आश्चर्य की बात यह है कि “तार्किक विसंगति” के पीछे का तर्क क्या है, यह किसी सरकारी अधिकारी को नहीं पता! हर राज्य के अलग-अलग अधिकारी इसे अपने ही तरीक़े से निर्धारित कर रहे हैं, जैसे कर्नाटक में 11 “लॉजिकल डिसक्रेपेंसी कैटेगरी” की बात की गयी। वे इस प्रकार से हैं - भाई-बहनों की दर्ज जन्म तिथियों के बीच नौ महीने से कम का अन्तर होना चाहिए, माता-पिता और बच्चे की उम्र में 15 साल से कम या 50 साल से अधिक का अन्तर होना चाहिए, दादा-दादी/नाना-नानी और पोते-पोती/नाती-नातिन की उम्र में 40 साल से कम का अन्तर होना चाहिए, मौजूदा वोटर लिस्ट और पिछली एसआईआर लिस्ट में माता-पिता के अलग-अलग नाम नहीं होने चाहिए, माता-पिता के साथ अलग-अलग रिश्ते (उदाहरण के लिए, एक लिस्ट में पिता और दूसरी में माता) नहीं होना चाहिए, ऐसी महिलाएँ जो मौजूदा लिस्ट में अपने पति से जुड़ी हैं लेकिन पिछली लिस्ट में अपने पिता से जुड़ी थीं, वो सूची में शामिल नहीं हो सकतीं, अलग-अलग रिविज़न में पिता के अलग-अलग नाम नहीं होने चाहिए, रिविज़न के बीच दर्ज उम्र में अजीब बदलाव नहीं होने चाहिए, यदि ‘प्रूफ़’ हेतु कोई सहायक दस्तावेज़ जमा नहीं (पेज 6 पर जारी)

राज्य	SIR पूर्व कुल मतदाता	ड्राफ़्ट सूची से हटे	फ़ॉर्म 6, 6 ए शामिल करके	हटाये गये मतदाता	SIR फ़ाइनल सूची
बिहार	7.89 करोड़	65 लाख	21.53 लाख	47 लाख	7.42 करोड़
पश्चिम बंगाल	7,66,37,529	58,20,899	1,82,036	83.86 लाख	6,44,52,609
उत्तर प्रदेश	15,44,30,092	2,88,74,067	84,28,767	2,04,45,300	13,39,84,792
असम	2,53,02,775	1151	***	2,43,485	2,49,58,139
गुजरात	5.08 करोड़	73.7 लाख	5.60 लाख	68,12,711	4.40,30,725
मध्य प्रदेश	5.74 करोड़	42,74,160	8,49,082	34,25,078	5,39,81,065
छत्तीसगढ़	2.12 करोड़	27.34 लाख	2,34,994	1,08,807	1,87,30,914
राजस्थान	5,46,56,215 CEO 5,48,84,479 ECI	41,84,891	12,91,365 (4,35,061 फ़ॉर्म 6)	2,42,760	5,15,19,929
तमिलनाडु	6,41,14,587	97,37,831	27.53 लाख	74,07,207	5.67* करोड़
केरल	2,78,59,855	24,17,503	11.65 लाख	9,06,211	2,70,52,007*
गोवा	11.85 लाख	1,00,042	14,484	1.28 लाख	10,57,566

'केचुआ' ने एसआईआर प्रक्रिया के ज़रिये दाँव पर लगा दी करोड़ों लोगों की ज़िन्दगी!

एसआईआर (SIR) चोर दरवाज़े से एन.आर.सी. (NRC) लागू करने का कुत्सित प्रयास है!

(पेज 5 से आगे)

किया गया तो वे भी सूची से बाहर होंगे, केवल आधार कार्ड को दस्तावेज़ के रूप में जमा करने वाले भी सूची से बाहर होंगे और एक ही माता-पिता से छह से अधिक बच्चे जुड़े हुए हैं, तो वे भी सूची से बाहर होंगे! यानी यदि इन विसंगतियों में से एक भी विसंगति किसी के फॉर्म में पायी जाती है, तो उनका नाम सूची से हटा दिया जायेगा!

अब ज़रा इन विसंगतियों को ज़मीनी हकीकत से मिलाकर देखा जाये। यदि यह लागू हुआ तो ज़्यादातर महिलाएँ मतदाता सूची से बाहर कर दी जायेंगी! जोकि बंगाल के एसआईआर में हुआ भी! बंगाल में जो लोग सूची से बाहर किये गये उनमें से 51% महिलाएँ थीं! भारत में कई परिवारों में छह से ज़्यादा बच्चे हैं, लेकिन ऊपरलिखित नियम के अनुसार उन सभी परिवारों के बच्चों को सूची से बाहर कर दिया जायेगा! बिहार में हुए एसआईआर में आधार कार्ड को दस्तावेज़ के रूप में नहीं स्वीकार किया जा रहा था, सर्वोच्च न्यायलय के आदेश पर 'केचुआ' ने आधार कार्ड को भी पहचान के सबूत के तौर पर दस्तावेज़ के रूप में शामिल किया। वरना एक बड़ी आबादी अपनी पहचान और पते का सबूत नहीं दे पाती और मतदाता सूची से बाहर कर दी जाती। आज भी एक बड़ी आबादी के पास अपनी पहचान के सबूत के रूप में आधार कार्ड के अलावा कुछ नहीं है, और ऊपर दिये नियम के अनुसार इस विसंगति के आधार पर एक बड़ी आबादी मतदाता सूची से बाहर धकेल दी जा सकती है।

यहाँ अभी सिर्फ़ कर्नाटक के उदाहरण का ज़िक्र किया गया है, अन्य राज्यों में इन्ही “विसंगतियों” की श्रेणी अलग-अलग क्रिस्म की है। यानी पूरे देश में हो रही एसआईआर की प्रक्रिया में मतदाता सूची से नाम हटाये जाने के मापदण्ड में कोई एकरूपता नहीं है। न ही इस बारे में जनता को कोई सूचना ही दी गयी कि आखिर वे कौन सी चीज़ें हैं जिनकी वजह से सूची से उनका नाम हटाया जा सकता है। पूरे एसआईआर की प्रक्रिया में इन “अतार्किक विसंगतियों” की वजह से लाखों मतदाताओं को, जो वैध पहचान दस्तावेज़ों वाले भारतीय नागरिक हैं, वोट देने के अधिकार से वंचित कर दिया गया है। यदि आप अभी भी कागज़ों को इकट्ठा करने में व्यस्त हैं तो समझ जायें कि कागज़ पूरे होने के बावजूद भी सूची में आपका नाम शामिल हो, इस बात की कोई गारण्टी नहीं है! जिनके पास सारे कागज़ हैं, उन्हें भी मतदाता सूची से बाहर कर दिया जा रहा है! इसका सबसे बड़ा उदाहरण है वरिष्ठ पत्रकार आर.राजगोपाल का मतदाता सूची से नाम काट दिया जाना। असल में एसआईआर की पूरी प्रक्रिया

में शुरू से ही किसी भी क्रिस्म की पारदर्शिता नहीं रखी गयी है। पिछले दो चरणों के एसआईआर में निकाली गयी मतदाता सूची में कितने लोगों को सूची से हटाया गया और किस आधार पर हटाया गया, इसकी किसी को कोई जानकारी नहीं है। हटाये गये लोगों में से कौन किस विधानसभा क्षेत्र से आता है या फिर एक विधानसभा क्षेत्र में कितने लोगों के नाम काटे गये, उन लोगों की धार्मिक-जातीय-लैंगिक पहचान क्या थी इन सबकी किसी को कोई जानकारी नहीं है। यहाँ तक कि जिन “घुसपैठियों” को निकाल बाहर करने के लिए यह पूरी क़वायद शुरू की गयी थी, उनका भी कुछ अता-पता नहीं है! आखिर कितने लोग ग़ैर क़ानूनी अप्रवासी बनकर भाजपा के देश (जिसमें सिर्फ़ अम्बानी-अडाणी जैसे लोग बसते हैं) को बर्बाद करने चले थे, इसकी किसी को जानकारी नहीं! चुनाव समाप्ति के बाद शायद ये सारे अप्रवासी खुद ही अपनी “घरवापसी” करवा चुके होंगे! खैर, इतना साफ़ नज़र आ चुका है कि योजनाबद्ध तरीक़े से इस पूरी प्रक्रिया में

प्रदेशों के आधिकारिक एसआईआर डेटा का हिसाब पूरी तरह से नहीं मिल रहा है। एसआईआर प्रक्रिया सभी राज्यों में 61.38 करोड़ मौजूदा मतदाताओं के साथ शुरू हुई थी। 5.29 करोड़ मतदाताओं को हटाने और फ़ॉर्म 6 और 6A के ज़रिये 1.87 करोड़ मतदाताओं को जोड़ने के बाद, अन्तिम सूची में 57.96 करोड़ मतदाता होने चाहिए थे। हालाँकि, प्रकाशित सूची में केवल 55.17 करोड़ मतदाता ही दिख रहे हैं, अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर 2.79 करोड़ का यह अन्तर कैसे पैदा हुआ?

61.38 करोड़ - 5.29 करोड़ + 1.87 करोड़ = 55.17 करोड़ कैसे हो गया?!

इसकी गणितीय व्याख्या तो 2ab वाले मोदी जी ही दे सकते हैं!

2.79 करोड़ मतदाताओं को ग़ायब कर देना यानी 2.79 करोड़ लोगों की ज़िन्दगियों को दाँव पर लगा दिया जाना, यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं है! इस तरह का अन्तर हम उन सभी राज्यों के एसआईआर के आँकड़ों में देख सकते हैं। ऊपर दी गयी तालिका में

रही हो लेकिन इतना तय है कि सर्वोच्च न्यायालय को इसका जवाब जानने में कोई दिलचस्पी नहीं है! एसआईआर की प्रक्रिया पर उठ रहे इन तमाम सवालों के बावजूद सर्वोच्च न्यायालय ने एसआईआर की प्रक्रिया पर अपनी मोहर लगा दी! आँखों पर पट्टी बाँधे इन न्याय की मूर्तियों ने मनमाने तरीक़े से हटाये जा रहे मतदाताओं पर कोई सवाल नहीं किया, इन मतदाताओं को किन मापदण्डों के आधार पर हटाया जा रहा है, इसकी कोई सुध नहीं ली, अन्तिम सूची की संख्या और पुरानी सूची से हटाये गये व जोड़े गये लोगों की संख्या में इतना अन्तर क्यों है, इसपर कोई सवाल नहीं किया, “तार्किक विसंगतियों” की श्रेणी को तय करने का अधिकार किसके पास है और क्यों वो अलग-अलग राज्यों में अलग है, इसपर भी कोई पूछताछ नहीं पूछा। सर्वोच्च न्यायालय ने बस यह कहकर कि चुनाव आयोग के पास मतदाता सूची में संशोधन करने का अधिकार है, पूरी एसआईआर की प्रक्रिया को वैध करार दे दिया!

जनवादी संस्थानों को अन्दर से खोखला कर उनका फ़ासीवादीकरण कर दिया है। इसलिए यदि आज इस ग़ैर-जनवादी प्रक्रिया को रोकने के लिए हम राज्य की किसी संस्था या निकाय से हस्तक्षेप की उम्मीद में बैठे हैं, तो यह हमारी मूर्खता ही होगी!

हमें समझना होगा कि एसआईआर जैसे सारे तिकड़म न सिर्फ़ भाजपा के सत्ता में बने रहने के लिए अपनाये जा रहे हैं बल्कि इनके ज़रिये भविष्य के लिए एक बड़ी आबादी को नागरिकता के अधिकार से वंचित कर, उसे दोयम दर्जे के रूप में तब्दील करने की कोशिश भी की जा रही है। अभी हाल ही में बिहार और बंगाल के मुख्यमंत्रियों ने एलान कर दिया कि जो भी लोग मतदाता सूची से बाहर हैं, वे सरकार की किसी भी कल्याणकारी योजना का लाभ उठाने से वंचित कर दिये जायेंगे। इस प्रकार एक बड़ी आबादी को ऐसी स्थिति में धकेल दिया जायेगा जिसमें उनके पास किसी भी चीज़ का अधिकार नहीं बचेगा!

ज़ाहिर है कि इसमें मुसलमानों को ख़ास निशाना बनाया जायेगा, लेकिन मुसलमानों के अलावा इसकी ज़द में ज़्यादातर ग़रीब मेहनतकश आबादी, महिलाएँ और दलित आबादी आयेगी। और मतदाता सूची में नाम आने या नहीं आने का इससे कोई रिश्ता नहीं है कि आपके पास सारे काग़ज़ मौजूद हैं या नहीं। यह पूरी तरह इसपर निर्भर करता है कि आपकी पहचान और आपका राजनीतिक झुकाव किस तरफ़ है! सूची में अपना नाम सुनिश्चित करने के लिए एक ही रामबाण नुस्खा है कि आपके पास भाजपा या संघ का सदस्यता कार्ड होना चाहिए! बस फिर क्या है आपको किसी बात की फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं है!

लेकिन यदि आपने अपना ज़मीर नहीं बेचा है, तो आपके पास एक ही उपाय है, वह है जागृत, गोलबन्द और संगठित होना! आहिस्ता-आहिस्ता छीने जा रहे अधिकारों पर आज हम सभी को अपनी चुप्पी तोड़ने की ज़रूरत है! आज पूरे देश की जनता को एकजुट व संगठित होकर यह ऐलान करने की ज़रूरत है कि ‘हम काग़ज़ नहीं दिखायेंगे!’

यदि सरकार यह चुन रही है कि उसकी जनता कौन होगी, तो वक़्त आ गया है कि जनता इसका चुनाव करे कि सत्ता किसकी होगी! अम्बानी-अडाणी जैसे पूँजीपतियों की सेवा में संलग्न फ़ासीवादियों की हुकूमत या फिर मज़दूरों-मेहनतकशों की हुकूमत!



किसी भी क्रिस्म की पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित नहीं की गयी है, ऐसा इसलिए ताकि भाजपा सरकार और संघ परिवार द्वारा मनमाने तरीक़े से लोगों का नाम मतदाता सूची से हटाया जा सके।

मनमाने तरीक़े से नाम हटाये जाने के लिए पूरी प्रक्रिया को अपारदर्शी तो बनाया ही गया, लेकिन शायद फ़ासीवादी हुकूमत के हितों की पूर्ति के लिए यह भी नाकाफ़ी था, इसलिए जारी किये गये आँकड़ों में भी घपलेबाजी की गयी! ज्ञात हो 'केचुआ' द्वारा उपलब्ध कराये गये आँकड़ों में आश्चर्यजनक अन्तर सामने आये हैं! 'सबरंग इण्डिया' और 'वोट फ़ॉर डेमोक्रेसी' ने इसका विस्तृत विश्लेषण किया और उसमें पाया कि 14 राज्यों और केन्द्र शासित

यह साफ़ ज़ाहिर है कि पुरानी सूची में मौजूद मतदाताओं की संख्या से हटाये गये मतदाताओं की संख्या को घटाने और जोड़े गये नये मतदाताओं की संख्या को जोड़ने के बाद अन्तिम सूची में जितने मतदाता होने चाहिए केचुआ द्वारा प्रकाशित अन्तिम सूची में वे उससे कम हैं। ज़ाहिर है कि जितनी संख्या का अन्तर सामने आया है, उतनी संख्या में लोगों को बाद में मनमाने तरीक़े से मतदाता सूची से आसानी से बाहर किया जा सकता है! यह करोड़ों की संख्या में लोगों की ज़िन्दगियों को तबाह कर सकता है।

अभी तक पता चली तमाम विसंगतियों ने एसआईआर की प्रक्रिया पर गम्भीर सवाल खड़े किये हैं। जनता भले ही इन तमाम सवालों का जवाब जानना चाह

चुनाव आयोग, ईडी, सीबीआई आदि सब तो पहले ही भाजपा के लिए नंगे और खुले तौर पर काम कर रहे थे लेकिन देश की न्यायपालिका जोकि आम तौर पर बुर्जुआ लोकतंत्र में अपनी छवि को पाक-साफ़ और निष्पक्ष दिखाने में एक हद तक कामयाब रहती थी और यही कारण था कि प्रायः वह प्रश्नेतर होती थी और उसका वर्चस्व अधिक व्यापक होता था, अब इस फ़ासीवादी दौर में उसका भी अन्दर से फ़ासीवादी 'टेकओवर' कर लिया गया है। अब वह भी प्रत्यक्ष तरीक़े से फ़ासीवादी ताक़तों के पक्ष को वैध ठहराने में लगी हुई है, हालाँकि इस प्रक्रिया में वह खुद अपनी वैधता खोती जा रही है। फ़ासीवादी ताक़तों ने एक दीर्घकालिक प्रक्रिया में तमाम बुर्जुआ

नोएडा मज़दूर आन्दोलन से जुड़े मामले में यूपी पुलिस द्वारा दायर चार्जशीट: ग़लत तथ्यों, सफ़ेद झूठों और मनगढ़न्त कहानियों का पुलिन्दा

नोएडा मज़दूर आन्दोलन के दौरान तथाकथित हिंसा भड़काने के आरोप में उत्तरप्रदेश पुलिस ने अप्रैल और मई माह में सैकड़ों मज़दूरों और आठ सामाजिक कार्यकर्ताओं को ग़ैर-क़ानूनी रूप से गिरफ़्तार किया था। इसके बाद मामले में दर्ज की गयीं चार एफ़आईआर में उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा चार्जशीट दाखिल की गयी। इसी सिलसिले में 7 जुलाई को दिल्ली के प्रेस क्लब में 'द कैम्पेन फॉर रिलीज़ ऑफ़ वर्कर्स एण्ड एक्टिविस्ट्स ऑफ़ नोएडा' की तरफ़ से एक प्रेस वार्ता आयोजित की गयी। इस प्रेस वार्ता में मौजूद सामाजिक कार्यकर्ताओं और अधिवक्ताओं ने नोएडा श्रमिक हिंसा मामले में यूपी पुलिस द्वारा दायर उपरोक्त चार्जशीट में मौजूद विरोधाभासी बातों, विसंगतियों और हास्यास्पद दावों पर विस्तार से बात की। इस आलेख में हम एक-एक करके यूपी पुलिस द्वारा रची गयी मनगढ़न्त कहानियों और बेबुनियाद व झूठे तथ्यों की शिनाख़्त करेंगे जिससे यह साफ़ हो जायेगा कि काफ़ी मशक्कत के बाद तैयार किये गये ये आरोप पत्र कुछ और नहीं बल्कि असहमति और विरोध की आवाज़ को कुचलने के लिए तैयार किये गये दस्तावेज़ हैं।

नोएडा श्रमिक हिंसा मामले में गिरफ़्तार मज़दूरों और कार्यकर्ताओं के ऊपर 11-12 एफ़आईआर के तहत मुक़द्दमें दर्ज किये गये हैं जिनमें से चार एफ़आईआर की चार्जशीट जून महीने में पुलिस ने सौंप दी थी। नोएडा फ़ेज़ - 2 थाने के अन्तर्गत दर्ज एफ़आईआर संख्या 163/2026, 164/2026, 165/2026 और 169/2026 की चार्जशीट पढ़ने के बाद यूपी पुलिस की परीकथाएँ लिखने की क़ाबिलियत पर आपका आखिरी शक़-शुब्हा भी दूर हो जायेगा! इन चार्जशीटों में न सिर्फ़ ग़लत तथ्य पेश किये गये हैं बल्कि मनगढ़न्त कहानियों की भी भरमार है। इन चारों आरोपपत्रों में मौजूद सभी विसंगतियों, ग़लतियों, हास्यास्पद बयानों और झूठों को सूचीबद्ध करना बहुत चुनौतीपूर्ण काम होगा और शायद 'मज़दूर बिगुल' के सभी पन्ने इसके लिए कम पड़ जायें! इसलिए हम यहाँ सबसे महत्वपूर्ण उदाहरणों के ज़रिये यूपी पुलिस की मनोहर कथाओं पर प्रकाश डालेंगे।

आरोप नम्बर 1: मज़दूरों की माँगें अनुचित थीं!

चार्जशीट 163/2026 में पुलिस ने कहा है कि मज़दूर अपनी 'अनुचित माँगों' को लेकर प्रदर्शन कर रहे थे! नोएडा पुलिस के हिसाब से ये अनुचित माँगें थी - न्यूनतम वेतन में वृद्धि (जो यूपी में 12 वर्षों से नहीं की गयी थी), ओवरटाइम का डबल रेट से भुगतान, साप्ताहिक अवकाश और बेहतर कार्यस्थितियाँ। सवाल यह बनता है कि अगर मज़दूरों की माँगें अनुचित थीं तब क्यों उत्तरप्रदेश सरकार ने, जो 12 वर्षों

से गहरी नींद में सोई हुई थी, अचानक मज़दूरों में 21 प्रतिशत वृद्धि की घोषणा कर दी? क्या इस देश में जीवन जीने लायक मज़दूरी की बात करना और अपने जायज़, संवैधानिक हक़ों के लिए प्रदर्शन करना अनुचित है? यूपी पुलिस के आरोप पत्रों के हिसाब से तो ऐसा ही प्रतीत होता है! इसलिए, इन अनुचित माँगों को उठाने के आरोप में मज़दूरों और कार्यकर्ताओं पर मुक़द्दमें दर्ज किये गये हैं!

आरोप नम्बर 2: मार्क्सवादी विचारधारा मानना!

यूपी पुलिस ने एक नयी खोज की है! उसने मार्क्सवादी विचारधारा को मानना एक अपराध घोषित किया है! चार्जशीट 163/2026 में पुलिस ने कहा है कि सत्यम वर्मा मार्क्सवादी विचारधारा का आरोपी है और पुलिस के हिसाब से यह उनका अपराध है! नोएडा के फ़ैक्ट्री मालिकों के लिए मनोरम कथाएँ रचने की जल्दबाज़ी में उत्तरप्रदेश पुलिस ने एक नया अपराध रच दिया है और इसके आरोप में एक वरिष्ठ पत्रकार के ऊपर 'राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून' जैसा दमनकारी क़ानून लगा दिया है। हालाँकि, यूपी पुलिस ने अपनी इस रचनात्मकता के बाद यह बताने की ज़रूरत नहीं समझी कि देश का कौन-सा ऐसा क़ानून है जो मार्क्सवादी विचारधारा को मानना अपराध बताता है?

आरोप नम्बर 3: दिल्ली में भगतसिंह युवा केन्द्र का उद्घाटन कार्यक्रम!

चार्जशीट 164, 165, 169 में यूपी पुलिस ने कहा है कि "22 मार्च 2026 को एक गुप्त षड्यंत्रकारी बैठक हुई जिसमें आरोपी कार्यकर्ताओं द्वारा हिंसा की योजना बनायी गयी थी।" मालूम हो कि 22 मार्च 2026 को दिल्ली के करावल नगर इलाक़े में 'शहीद भगतसिंह युवा केन्द्र' का उद्घाटन किया गया था। इस कार्यक्रम में दिल्ली और अन्य राज्यों से छात्र, नागरिक, बुद्धिजीवी, कलाकार शामिल हुए थे। इस कार्यक्रम में सत्यम वर्मा भी एक वक्ता के तौर पर आमंत्रित थे। जब यूपी पुलिस को नोएडा हिंसा मामले में गिरफ़्तार सामाजिक कार्यकर्ताओं के खिलाफ़ कोई सबूत नहीं मिला तब उन्होंने अपनी स्क्रिप्ट में फ़िट करने के लिए युवा केन्द्र के इस सार्वजनिक उद्घाटन समारोह को ही साज़िश बता दिया! हालाँकि अपनी बात को पुष्ट करने के लिए उन्होंने कोई सबूत देना भी ज़रूरी नहीं समझा और कोर्ट में जब तक यह बात साबित होगी तब तक न्यायिक प्रक्रिया ही अपने आप में एक सज़ा बन चुकी होगी।

आरोप नम्बर 4: भड़काऊ भाषण और सन्देश दिये गये!

चार्जशीट 164/2026 में दावा किया

गया है कि गिरफ़्तार मज़दूर कार्यकर्ताओं आदित्य आनन्द और रूपेश रॉय ने 11 अप्रैल 2026 को भड़काऊ भाषण दिये जिससे हिंसा भड़की मगर यूपी पुलिस के पास इसका समर्थन करने के लिए कोई सबूत मौजूद नहीं है। हालाँकि सार्वजनिक रूप से कई ऐसे वीडियो प्रमाण मौजूद हैं जिनमें रूपेश और आदित्य हड़ताल को शान्तिपूर्ण बनाये रखने की शपथ दिला रहे हैं तथा अपने भाषणों में शान्तिपूर्ण प्रदर्शन की अपील कर रहे हैं। इसी आरोपपत्र में आकृति चौधरी, मनीषा चौहान, सृष्टि गुप्ता और हिमांशु ठाकुर के हिंसक भाषण देने का भी पुलिस ने दावा किया है लेकिन जैसा कि उन्होंने हर बार ही किया है, अपने इस दावे को पुष्ट करने के लिए कोई भी सबूत देना उचित नहीं समझा है। 13 अप्रैल को नोएडा में हुई हिंसा का आरोप उन लोगों पर लगाया गया है जो 11 अप्रैल को ही पुलिस द्वारा हिरासत में लेकर जेल भेज दिये गये थे!

ठीक इसी तरह के दावे चार्जशीट 169/2026 में भी है। पुलिस का कहना है कि योगेश मीणा ने व्हाट्सएप ग्रुप पर भड़काऊ सन्देश भेजे परन्तु कोई ऐसा सन्देश जिसमें योगेश हिंसात्मक या भड़काऊ बात कर रहा हो पुलिस की चार्जशीट में नहीं मिलता। व्हाट्सएप ग्रुप में जाँच के बाद योगेश द्वारा भेजे गये जो सन्देश सामने आते हैं उसमें वह बार-बार मज़दूरों से शान्तिपूर्ण हड़ताल की अपील करता हुआ दिख रहा है। कई स्वतंत्र मीडिया चैनलों ने जब व्हाट्सएप ग्रुप की छानबीन की तो सच्चाई पुलिस के दावों से बिल्कुल उलट निकली! भड़काऊ सन्देश भेजने वाले लोग पुलिस महकमें से जुड़े हुए निकले। पुलिस की कहानी में शान्ति की बात करने वाले अपराधी बताये जा रहे हैं जबकि जो असल में हिंसा भड़काने की बात कर रहे हैं उनके खिलाफ़ यूपी पुलिस कोई कार्रवाई करती हुई दिख नहीं रही है।

इसके अलावा भी उत्तर प्रदेश पुलिस ने मज़दूरों के समर्थन में बोलने, लिखने और प्रदर्शन में शामिल होने जैसे संवैधानिक व जनवादी अधिकारों के अमल का आरोप भी गिरफ़्तार व्यक्तिओं के ऊपर लगाया है। प्रेस वार्ता में बताया कि किस तरह उत्तरप्रदेश पुलिस ने अपनी चार्जशीट में जो आरोप लगाये हैं वो अपने आप में ही बेबुनियाद हैं, क्योंकि हिंसा से जुड़े किसी भी मसले में आरोपियों के खिलाफ़ कोई साक्ष्य पेश नहीं किये गये हैं। जो साक्ष्य दिये गये हैं वे अपने आप में इतने विरोधाभासी हैं कि वे पुलिस की जाँच-पड़ताल पर ही गम्भीर सवाल खड़े करते हैं। मसलन पुलिस के दस्तावेज़ में कार्यकर्ताओं के गिरफ़्तारी की तारीख में विरोधाभास का होना।

यूपी पुलिस की चार्जशीट में सबसे बुनियादी तथ्य यानी गिरफ़्तारी की तारीखों में ही विसंगतियाँ हैं!

एफ़आईआर 163, 164, 165 के आरोपपत्र में रूपेश, आकृति, सृष्टि और मनीषा की गिरफ़्तारी की तारीखें रिमाण्ड शीट में दी गयी तारीखों से मेल नहीं खाती हैं। मालूम हो कि इन चारों कार्यकर्ताओं को नोएडा पुलिस ने 11 अप्रैल की शाम तक़रीबन 7 बजे बोटैनिकल गार्डन मेट्रो स्टेशन से अगवा कर लिया था और 12 अप्रैल को इन्हें जेल भेज दिया गया था जिसके स्पष्ट वीडियो प्रमाण मौजूद हैं। इसके बावजूद इनकी गिरफ़्तारी की तारीखें रिमाण्ड शीट और चार्ज शीट में अलग-अलग हैं। वरिष्ठ पत्रकार सत्यम वर्मा के मामले में भी हम देखते हैं कि यूपी पुलिस ने इसी तरह के चौकाने वाले खुलासे किये हैं! सीसीटीवी फुटेज से पता चलता है कि सत्यम को यूपी पुलिस ने 17 अप्रैल को रात करीब 11 बजे लखनऊ स्थित उनके आवास से उठाया था। हालाँकि आरोप-पत्र में दावा किया गया है कि उन्हें 19 अप्रैल को नोएडा फ़ेज़-2 पुलिस स्टेशन से गिरफ़्तार किया गया था!

हिमांशु ठाकुर का मामला भी ऐसा ही है। उन्हें 18 अप्रैल को दिल्ली के शालीमार बाग के उनके कमरे से पुलिस ने उठाया था। यह तथ्य एफ़आईआर 163 की केस डायरी में दर्ज है मगर आरोपपत्र में गिरफ़्तारी की तारीख और स्थान 19 अप्रैल को नोएडा फ़ेज़-2 पुलिस स्टेशन बताया गया है। एक ही चार्जशीट में तारीखों की इतनी विसंगतियाँ हैं कि चार्जशीट को पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति पुलिस के इस अनोखे कारनामे का कारण नहीं बता सकता!

अभियुक्तों की गिरफ़्तारी के स्थानों में विसंगतियाँ

एफ़आईआर 169/2026 के आरोपपत्र में लिखा है कि हिमांशु 10 अप्रैल को नोएडा में रुके थे, हालाँकि इसी चार्जशीट की केस डायरी में हिमांशु के फ़ोन लोकेशन रिकॉर्ड से पता चलता है कि वह उस समय दिल्ली में अपने निवास पर थे! वहीं एफ़आईआर 164/2026 के आरोपपत्र में यह कहा गया है कि आकृति, सृष्टि, मनीषा, रूपेश, आदित्य और हिमांशु ने हिंसक भाषण दिये और 13 अप्रैल को आगजनी और हिंसा के कृत्यों को अंजाम देने में मौजूद थे। मालूम हो कि आकृति, सृष्टि, मनीषा और रूपेश को यूपी पुलिस ने 11 अप्रैल की शाम करीब सात बजे गिरफ़्तार कर लिया था और अगले दिन गौतमबुद्ध नगर की ज़िला कारावास भेज दिया गया था। दूसरा, 13 अप्रैल को न तो आदित्य और न ही हिमांशु प्रदर्शन स्थल पर मौजूद थे, जिसे उनके फ़ोन लोकेशन

रिकॉर्ड से साबित किया जा सकता है। अब सवाल यह उठता है कि जेल भेजे गये चार कार्यकर्ता और नोएडा में अनुपस्थित हिमांशु और आदित्य 13 अप्रैल को भड़काऊ भाषण कैसे दे सकते हैं? पुलिस के उपरोक्त तथ्य सत्यम वर्मा और आकृति चौधरी के खिलाफ़ 'राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून' लागू करने के आधार के रूप में प्रस्तुत दस्तावेज़ों से भी मेल नहीं खाते हैं। रासुका (National Security Act) के तहत सत्यम वर्मा की हिरासत के आधार को बताते हुए ज़िला मजिस्ट्रेट को सौंपे गये दस्तावेज़ में कहा गया है कि सत्यम 10, 11 और 13 अप्रैल 2026 को नोएडा में मौजूद थे। हालाँकि, एफ़आईआर की चार्जशीट में उसी यूपी पुलिस ने दावा किया है कि वह उस दौरान नोएडा में नहीं थे!

आगे, 164/2026 के आरोपपत्र में दावा किया गया है कि रूपेश को हिंसक आन्दोलन के दौरान गिरफ़्तार किया गया था जबकि लाइव वीडियो और हज़ारों प्रत्यक्षदर्शियों से पता चलता है कि उन्हें पुलिसकर्मियों ने सादे कपड़ों में 11 अप्रैल को शाम 7 बजे के आसपास बोटैनिकल गार्डन मेट्रो स्टेशन से उठाया था। यह कैसे सम्भव है यह तो सिर्फ़ और सिर्फ़ यूपी पुलिस ही बता सकती है!

स्वतंत्र पत्रकारों व जनपक्षधर कार्यकर्ताओं द्वारा यूपी पुलिस के लोगों की हिंसा को भड़काने में संलिप्तता के स्पष्ट प्रमाण देने के बावजूद भी कोई कार्रवाई क्यों नहीं?

मालूम हो कि 17 अप्रैल से ही कई स्वतंत्र पत्रकारों व जनपक्षधर कार्यकर्ताओं द्वारा कथित तौर पर यूपी पुलिस के एक सीनियर अधिकारी के ड्राइवर अनिल कुमार (ऐसा दावा इस व्यक्ति ने खुद किया था) और एसआई बीना के खिलाफ़ मज़दूरों को भड़काने के प्रमाण सार्वजनिक किये जा रहे थे। मगर यूपी पुलिस ने इन प्रमाणों की सत्यता जाँचने और निष्पक्ष व पारदर्शी कार्रवाई करने के बजाय उन मीडिया चैनलों को ही निशाना बनाया जो इस सच्चाई को तथ्यों के साथ पेश कर रहे थे। मगर बढ़ते जनदवाब और सुप्रीम कोर्ट में मसले के पहुँचने के कारण उत्तर प्रदेश पुलिस को अनिल कुमार को गिरफ़्तार करने का दिखावा करना पड़ा और दो हफ़्ते के भीतर उसे ज़मानत पर रिहा भी कर दिया गया!

चार्जशीट 169/2026 में पुलिस ने ड्राइवर अनिल कुमार की गिरफ़्तारी का विवरण दिया है, जिसने स्वयं यूपी पुलिस के एक वरिष्ठ अधिकारी के लिए काम करने का दावा किया था, जिसमें लिखा गया है कि पुलिस को ऐसी जानकारी (पेज 8 पर जारी)

(पेज 7 से आगे)

CaRWAN के सोशल मीडिया पेज से मिली थी! हालाँकि उसी सोशल मीडिया पेज पर एसआई बीना द्वारा ग्रुप में भेजे जा रहे भड़काऊ स्क्रीनशॉट का भी खुलासा किया गया था मगर उसपर यूपी प्रशासन ने अबतक कोई कार्रवाई नहीं की है। एसआई बीना की भूमिका पर सवाल उठता देख यूपी पुलिस ने अपनी स्क्रिप्ट में उन्हें 'अण्डरकवर इण्टेलिजेंस ऑपरेटिव' का रोल दे दिया! पुलिस ने अबतक अनिल कुमार के कॉल रिकॉर्ड, लोकेशन रिकॉर्ड, बैंक खाते का विवरण सार्वजनिक नहीं किये हैं। ऐसा क्यों नहीं किया गया है यह तो यूपी पुलिस ही जानती है! अनिल कुमार के ये रिकॉर्ड राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े दस्तावेज तो ठहरे नहीं! फिर इन्हें सार्वजनिक करने में क्या आपत्ति हो सकती है? अगर ये रिकॉर्ड सार्वजनिक कर दिये जायें तो इस बात का भी खुलासा हो जायेगा कि अनिल कुमार आखिर किसके इशारे पर मजदूरों के ग्रुप में भड़काऊ ऑडियो सन्देश भेज रहा था। कई जनपक्षधर नागरिकों,

अधिवक्ताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं का कहना है कि नोएडा हिंसा मामले में पुलिस द्वारा बोले जा रहे झूठ, गलतबयानियाँ और अपारदर्शी छानबीन न सिर्फ हक़ की आवाज़ को कुचलने की कोशिश है बल्कि यह मजदूर आन्दोलन में हिंसा को अंजाम देने में 'एजेण्ट प्रोवोकेटर' के तौर पर स्वयं पुलिस की मिलीभगत को भी दर्शाती है, जैसा कि सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका में रेखांकित किया गया है। इसके अलावा पुलिस हिरासत के दौरान मजदूरों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ हिंसा, गाली-गलौज और नकली सबूतों के निर्माण की कोशिश चार्जशीट के हर शब्द पर गहरे सवाल उठाने के लिए मजबूर करती हैं।

नोएडा श्रमिक आन्दोलन मामले में उत्तर प्रदेश पुलिस की भूमिका पर शुरू से ही सवाल उठते रहें हैं मगर आरोपपत्र दाखिल होने के बाद से यह बिल्कुल साफ़ हो गया है कि पुलिस किस तरह अपने राजनीतिक आकाओं को खुश करने के लिए काम कर रही थी जैसा कि

हाल ही में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने एक फ़ैसले के दौरान टिप्पणी भी की थी। अधिवक्ताओं ने चार्जशीट में मौजूद झूठों और मनगढ़न्त कहानियों का खुलासा करते हुए कहा कि यूपी पुलिस इस मसले में पहले दिन से ही कानून और संविधान को ताक़ पर रखकर काम करती हुई दिखायी दे रही है। सबसे पहले तो मजदूरों और सामाजिक कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारी में पुलिस ने किसी कानूनी प्रक्रिया का पालन करना उचित नहीं समझा। 16 साल के नाबालिग को गिरफ़्तार कर महीनों जेल में रखा गया। सामाजिक कार्यकर्ताओं का मीडिया ट्रायल करवाकर उन्हें "पाकिस्तानी एजेण्ट", "नक्सली" और अपराधी तक करार दे दिया गया। पूरे आन्दोलन को ही षड्यंत्र बताकर बेगुनाह लोगों को जेल भेज दिया गया और कोर्ट में जब साक्ष्यों के अभाव में ज़मानत की उम्मीद दिखने लगी तो दो कार्यकर्ताओं पर रासुका जैसा दमनकारी कानून थोप दिया गया।

मज़ेदार बात यह रही कि आन्दोलन के दौरान भड़की हिंसा की तहक़ीकात में पुलिस ने उन्हें ही पूछताछ के दायरे में नहीं रखा जो वास्तव में हिंसात्मक या भड़काऊ सन्देश भेज रहे थे! सिर्फ़ इतना ही नहीं, यूपी पुलिस ने स्वतंत्र तौर पर हिंसा से जुड़े साक्ष्य देने वाले लोगों से भी सबूत लेने से सीधा मना कर दिया! सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिका के कारण जवाबतलब किये जाने और काफ़ी जनदबाव के बाद पुलिस को ड्राइवर अनिल कुमार को फ़िल्मी स्टाइल में दो महीने बाद गिरफ़्तार करना पड़ा। यह भी इसलिए ताकि इस सवाल को दबाया जा सके कि आखिर किसके कहने पर सरकारी एजेंसी के लिए काम करने वाला यह ड्राइवर मजदूरों के व्हाट्सएप ग्रुप में भड़काऊ सन्देश भेज रहा था? ताकि यह सवाल लोग पूछें कि नोएडा की एक एसआई बीना कौर क्यों मजदूरों के ग्रुपों में भड़काऊ स्क्रीनशॉट शेयर कर रही थी? यह कैसे सम्भव हुआ कि जिस व्यक्ति के खिलाफ़ भड़काऊ बात करने

के साक्ष्य हैं वह ज़मानत पर रिहा हो जाता है मगर शान्ति की अपील करने वाले कार्यकर्ताओं को एक के बाद एक नये एफ़आईआर में महीनों तक नामज़द किया जा रहा होता है? ऐसे कई सवाल इस मामले में यूपी पुलिस को सन्देह के घेरे में खड़े करते हैं।

कुलमिलाकर कहें तो उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा पेश की गयी चार्जशीट अनेकों अन्तर्विरोधी तथ्यों से भरी हुई हैं जिससे यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि उन्होंने नोएडा के फ़ैक्ट्री मालिकों की सेवा में कोई कसर नहीं रख छोड़ी है। साथ ही इससे एक और बात जो स्पष्ट होती है वह यह कि गिरफ़्तार कार्यकर्ताओं के खिलाफ़ बिना किसी ठोस सबूत के उन्हें जेलों में भरा गया है और पूरी कानूनी प्रक्रिया को ही सज़ा में तब्दील कर दिया गया है। यूपी पुलिस ने नोएडा हिंसा मामले में दायर आरोपपत्रों के ज़रिये न सिर्फ़ अपनी अद्भुत कलात्मक व अद्वितीय रचनात्मक क्षमता का परिचय दिया है बल्कि अपने असल उद्देश्यों को भी उजागर कर दिया है!

नोएडा हिंसा के नाम पर हुई अन्यायपूर्ण गिरफ़्तारियों और दमन के तीन माह पूरे होने पर देशव्यापी विरोध प्रदर्शनों का आयोजन

● बिगुल संवाददाता

'नोएडा के मजदूरों और कार्यकर्ताओं की रिहाई के लिए अभियान' (CaRWAN) के आह्वान पर नोएडा हिंसा मामले में झूठे आरोपों में फँसाये गये मजदूरों और कार्यकर्ताओं की पहली गिरफ़्तारी के तीन महीने पूरे होने के मौक़े पर 11 जुलाई को देशव्यापी विरोध प्रदर्शन का आयोजन किया गया। ये विरोध प्रदर्शन दिल्ली, महाराष्ट्र के पुणे और मुम्बई, हैदराबाद, उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, बनारस, आन्ध्र प्रदेश के विजयवाड़ा और विशाखापट्टनम, पटना, हरियाणा के नरवाना व कैथल और कोलकाता में आयोजित किये गये। प्रदर्शनों के दौरान सभी निर्दोषों की रिहाई की माँग की गयी। वरिष्ठ पत्रकार सत्यम वर्मा और सामाजिक कार्यकर्ता आकृति चौधरी पर लगाये गये दमनकारी रासुका/NSA के खिलाफ़ भी रोष व्यक्त किया गया।

'कारवान' की ओर से बात रखते हुए केशव ने बताया कि नोएडा में हुए मजदूरों के स्वतःस्फूर्त आन्दोलन के दौरान भड़की हिंसा के मामले में नोएडा पुलिस द्वारा आठ कार्यकर्ताओं और सैकड़ों श्रमिकों को गिरफ़्तार कर लिया गया था। इनमें से वरिष्ठ पत्रकार सत्यम वर्मा और छात्र कार्यकर्ता व रंगकर्मी आकृति चौधरी पर दमनकारी रासुका लगा दिया गया। नोएडा के मजदूरों का यह आन्दोलन बेहद कम मजदूरी, श्रम कानूनों के हनन और घटिया कार्य-स्थितियों के कारण भड़का था किन्तु यूपी एसटीएफ़ इसके पीछे किसी तथाकथित षड्यन्त्र की कहानी गढ़कर, कानून-संविधान को ताक पर रखकर 'सिंघम' स्टाइल में "गिरफ़्तारियाँ" करती

घूम रही है। यूपी पुलिस की इस कार्यशैली का देश भर के पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और तमाम न्यायप्रिय संगठनों ने विरोध किया है और पूरे मामले की उच्चस्तरीय जाँच की माँग की है। 'रक्स मीडिया कलेक्टिव' से जुड़े वरिष्ठ कलाकार शुद्धोब्रत सेनगुप्ता ने कहा कि आज के समय में जनता के संघर्षों से हमदर्दी दिखाना, और संवेदनशील नागरिक होना भी गुनाह

बना दिया गया है। सुप्रीम कोर्ट के कई वरिष्ठ वकीलों और कई प्रतिष्ठित मीडिया संस्थानों के अनुसार हाल ही में यूपी पुलिस द्वारा पेश किये गये आरोप-पत्रों में बहुत ज़्यादा विरोधाभास पाये गये हैं। यही नहीं अब यूपी पुलिस एक ही मामले में सभी कार्यकर्ताओं पर दर्जन भर एफ़आईआर दर्ज कर रही है ताकि उनके जेल से बाहर आने के रास्ते में रोड़े अटकाये जा सकें।

वक्ताओं ने कहा कि हम सभी देश में पुलिस द्वारा रासुका के बारम्बार दुरुपयोग से भली-भाँति परिचित हैं, जिसकी ओर उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने कई बार ध्यान दिलाया है, साथ ही वरिष्ठ वकीलों, कानूनी विशेषज्ञों और मानवाधिकार संगठनों ने भी इसे रेखांकित किया है। 11 जुलाई को हुए देशव्यापी विरोध प्रदर्शनों में जाने-माने मानवाधिकार

कार्यकर्ताओं, छात्रों, युवाओं, श्रमिकों और एक्टिविस्टों ने भागीदारी की। वक्ताओं ने कहा कि देश की सभी न्यायप्रिय ताकतों और संगठनों के द्वारा इस अन्याय का विरोध किया जाना चाहिए। वक्ताओं ने यूपी सरकार व नोएडा पुलिस के रवैये की भर्त्सना की और सभी कार्यकर्ताओं और श्रमिकों की तत्काल रिहाई सहित इस पूरे मामले की उच्चस्तरीय जाँच की माँग की।



असामान्य मौसमी बदलावों से पनपी ताप लहर का कहर झेल रही मेहनतकश जनता

● सनी

हमारे देश में बरसात का मौसम चल रहा है। कई राज्यों में सूखा पड़ने के बाद देर से ही बारिश आ तो गयी पर इसके इस बार कम रहने की सम्भावना है। कुछ जगहें सूखे से त्रस्त हैं तो कुछ अचानक आने वाली बेहद तेज बारिश के कारण आयी बाढ़ और जलभराव से। गाँवों में मकान, मवेशी और खेत डूब रहे हैं तो शहरों में मकान धँस रहे हैं। बिहार, असम, अरूणाचल प्रदेश और महाराष्ट्र से लेकर कई राज्य बाढ़ से प्रभावित हैं। सूरत और मुम्बई जैसे शहर भी बाढ़ में डूब गये। शहर गर्मी में ताप को सोखते हैं तो बरसात में पानी को। पिछले कुछ सालों में प्रकृति की बेइन्तहा तबाही का असर अब सभी जनों पर पड़ने लगा है। इस साल सर्दी में जानलेवा प्रदूषण की मार के बाद ताप लहर ने आम लोगों का जीवन दूँध कर दिया। बरसात के चलते कुछ राज्यों में इससे आंशिक निवारण मिलने लगा ही था कि फिर इस गर्मी ने हमें साक्षात नर्क के ताप से वाक्कि़फ़ करा दिया! यूरोप और अमेरिका से लेकर कई देश इस ताप लहर की मार झेल रहे हैं। डब्लूएचओ के अनुसार पूरी दुनिया में इस साल गर्मी से 4,80,000 मौतें होने की सम्भावना है जिसमें 45 प्रतिशत अकेले एशिया में हो सकती हैं। यह भूमण्डलीय ताप का कहर ही है जिसे हम समूचे भूमण्डल में एकसमान झेल रहे हैं।

कड़वा सच यह है कि हमारे देश में ताप लहर में सबसे अधिक ग़रीब ही मारे गये हैं। इस ताप लहर में सबसे भयावह मार मज़दूरों, बेघरों और झुग्गीवासियों ने झेली है। तारकोल में जड़ित रोड़ी की सड़क पर तापमान दिल्ली में 60-70 डिग्री पहुँच जाता है। गिग वर्कर्स का अधिकतम समय इन सड़कों पर ही बीतता है। शहरों में ट्रैफ़िक लाइट पर करतब दिखाते बच्चे जलती सड़कों पर करतब दिखाकर भीख माँगने और मरने को अभिशप्त हैं। भवन निर्माण मज़दूर, खेतिहर मज़दूर-ग़रीब किसान, रिक्शा मज़दूर आदि के हालात भी इस इस गर्मी में सूरज के भीषण ताप से असहनीय हो गये। बात केवल सड़कों या खेतों में काम करने वाले मेहनतकशों की ही नहीं है, कारख़ाना मज़दूरों की हालत भी पतली हो गयी क्योंकि देश की अधिकतम फैक्ट्रियाँ हवादार नहीं हैं। गर्मी और उमस में तेज़ हाथ दौड़ाते हुए मज़दूर चक्कर खाकर गिरते रहते हैं। धातु को आकार देने वाली फैक्ट्रियों के 600-1200 डिग्री तापमान में मज़दूरों के शरीर का पानी तक सूख जाता है। आम तौर पर ही गर्मियों में रिक्शा मज़दूरों, भवननिर्माण मज़दूरों और शहरों के कोनों में बसे औद्योगिक इलाक़ों में कार्यरत मज़दूरों की मौतें होती रहती है। ताप लहर में ये मौतें कई गुना बढ़ गयी हैं। मसला केवल कार्यस्थल का नहीं है,

ग़रीबों की झुगियाँ भी इन गर्मियों में नर्क बन जाती हैं। हाइटोड़ मेहनत के बाद आराम करने लौटते मज़दूरों को गर्मी से रातों को भी आराम नहीं मिलता। सूरज डूबने के बाद झुगियाँ राख-सी सुलगती रहती हैं। एस्बस्टस की शीट और ईंटों के कमरों से हवा पार न होने की वजह से यहाँ तापमान रात को भी कम नहीं होता। ग़रीब मोहल्लों में आम तौर पर तपन रातों में भी बरक़रार रहती है और ऊपर से अक्सर गर्म रातों में इन मोहल्लों में 'लोड शेडिंग' की जाती है ताकि अमीरों की कोठियाँ गुलज़ार रहें।

ताप लहर की परिघटना तब होती है जब किसी जगह का तापमान एक दिन से अधिक सामान्य से कुछ डिग्री सेल्सियस ऊपर रहता है। हालाँकि मसला केवल तापमान का नहीं है क्योंकि अगर मौसम में उमस हो तब शरीर द्वारा पसीना बहाकर ताप विनिमय की प्रक्रिया बाधित हो जाती है और इंसान कम तापमान में भी तपिश के चलते मर सकता है। इसलिए उमस और गर्मी को साथ मापने के लिए 'महसूस होने वाले तापमान' को मापा जाता है। बरसात की शुरूआत में इस वजह से ही तपिश से राहत नहीं मिल रही है। भारत में इस ताप लहर ने इस साल हजारों जानें ले ली हैं। 'द वायर' की एक रिपोर्ट के अनुसार ताप लहर के कारण एक दिन में ही भारत में 3,400 मौतें तक हो जाती हैं और अगर 5 दिन ताप लहर रहे तो यह आँकड़ा 30,000 के पार हो जाता है। इस साल भारत में यह ताप लहर दर्जन दिनों से अधिक रह चुकी है और हजारों मौतों का कारण बन चुकी है जिसपर जुमलों की सरकार चूँ तक नहीं कर रही है। आम तौर पर ही कुछ सालों से गर्मी के चलते अकारण मौतें बढ़ी हैं। अस्पतालों में साँस की बीमारी, दिल का दौरा और न जाने कितने कारणों से ऐसी मौतें हो रही हैं जिनमें लू लगना एक प्रमुख परन्तु अदृश्य कारण है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, गुजरात और राजस्थान में सबसे अधिक ताप लहर से मौतें हुई हैं। भारत में पहले गर्मी का ऐसा प्रकोप यदा-कदा ही घटित होता था, लेकिन अब यह सालाना मौसमी परिघटना बन गया है।

आम नागरिकों का जीवन इस ताप लहर और आम तौर पर ग्रीष्म ऋतु में भयावह रहा है। खासतौर पर यह मार शहरों में अधिक पड़ती है। इसमें भी सबसे भयंकर हालात ग़रीबों की झुगियों में होते हैं जहाँ शहर में सबसे अधिक घनी बसावट होती है और पेड़ न के बराबर होते हैं जिस वजह से ताप इन इलाक़ों में शहर के किसी भी दूसरे हिस्से से अधिक रहता है। छत से बिजली के पंखे गर्म हवा फेंकते रहते हैं। तीव्र गर्मी में अमीरों की कोठियों में और उच्चमध्यवर्गीय मोहल्लों में बिजली के उपकरण अधिक ऊर्जा की खपत करते हैं जिसका लोड उठाने के

लिए ग़रीब मोहल्लों में बिजली काट दी जाती है। गर्मियों के सबसे गर्म दिनों में एयरकण्डिशनर द्वारा कुल बिजली खपत का करीब 60 प्रतिशत इस्तेमाल होता है। हालाँकि एयरकण्डिशनर केवल 8-12 प्रतिशत घरों में ही लगे हैं यानी आधी से अधिक बिजली खपत कर भीषण गर्मी से बचने का इंतज़ाम केवल 8-12 प्रतिशत घर ही कर पाते हैं। यह बिजली खपत के सामाजिक वर्ग विभाजन के अनुसार ही वितरण को भी दर्शाता है। ताप लहर से राहत की तकनोलॉजी उपलब्ध होने के बावजूद इसकी आम लोगों तक पहुँच नहीं है। ताप लहर का दीर्घकालीन समाधान हर घर में एयरकण्डिशनर लगाना नहीं है बल्कि 'शहरी ताप द्वीप परिघटना' को ख़त्म करना है। आधुनिक शहरों को कंक्रीट का जंगल कहा जाता है। कंक्रीट समान आयतन वाली हवा के मुक़ाबले 2000 गुना ताप को सोखता है और पूरे शहर कंक्रीट से ढके होने के कारण ताप को सोखते रहते हैं। पृथ्वी की भू-सतह के केवल करीब 0.5-2 प्रतिशत भाग में शहर बसे हैं पर इतने हिस्से में दुनिया की आधी से अधिक आबादी बसती है। शहरों में बेहद घनी बसावट, पक्की कंक्रीट की सतहें और हरियाली के समासप्राय होने के कारण ये तापकुण्ड बन जाते हैं। इसे ही 'शहरी ताप द्वीप परिघटना' कहा जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था में शहर और गाँव का अन्तरविरोध विकराल रूप ले लेता है। पूँजीवाद द्वारा प्रकृति की तबाही के चलते आम जीवन पर प्रभाव इस अन्तरविरोध को स्पष्ट उभार देता है। 'शहरी ताप द्वीप परिघटना' भी इसका ही परिणाम है। हमारे वर्ग-विभाजित समाज में प्रकृति की तबाही के चलते मौसम और अन्य प्राकृतिक आपदाओं का प्रकोप सबसे अधिक ग़रीबों पर ही पड़ता है। इस देश की तीन चौथाई मेहनतकश आबादी गर्म मौसम की असहनीय तपिश में भी काम करने को मजबूर है। खेती, भवननिर्माण, गिग वर्क से लेकर ज़्यादातर अनौपचारिक क्षेत्र में लगी मज़दूर आबादी सीधे ही गर्मी की मार झेलती है। इस आबादी की सुरक्षा का इंतज़ाम करना पूँजीपति वर्ग के लिए मुनाफ़े का सौदा नहीं है। हजारों मज़दूरों के ताप लहर में मरने के बावजूद पूँजीपतियों के लिए बेरोज़गारों की फ़ौज के तौर पर सस्ती श्रमशक्ति उपलब्ध रहती है। इसलिए न तो कार्यस्थल पर और न ही मज़दूरों की रिहायश में ताप लहर से बचने के कोई इंतज़ाम किये जाते हैं। मज़दूर ही नहीं ग़रीब किसानों की ज़िन्दगी भी प्रकृति की तबाही के चलते दूँधर होती जाती है। ताप लहर बड़े पैमाने पर फसल की बर्बादी के लिए ज़िम्मेदार है जो ग़रीब किसानों को तबाही के मुँह में धकेलती है। किसान आबादी में भी भीषण गर्मी, सूखा और

बाढ़ की सबसे अधिक मार ग़रीब किसानों पर ही पड़ती है। ग़रीब किसान बर्बाद होकर शहरों में मज़दूरों की जमात में शामिल होते रहते हैं। ताप लहर या प्रकृति की अन्य प्रकार की तबाही की वजह से यह बर्बादी और बढ़ गयी है।

2024 में सबसे अधिक 20 दिन अत्यधिक गर्मी के यानी ताप लहर के दिन थे और इस साल यह रिकॉर्ड टूट सकता है। साल-दर-साल दुनिया का तापमान बढ़ता ही जा रहा है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मौजूदा साल अभी तक का सबसे गर्म साल रहने वाला है। यह इस कारण भी है कि इस साल 'सूपर एल नीनो' के चलते प्रशान्त महासागर भूमध्य रेखा के इर्द-गिर्द गर्म हो चला है जिससे पूरी दुनिया का तापमान बढ़ गया है। इस परिघटना के चलते ही भारत में मानसून प्रभावित हो रहा है। ग्रीष्म ऋतु वसन्त के साथ बरसात को भी निगलती जा रही है। यह पूरी दुनिया के स्तर पर होने वाले उत्पादन में जीवाश्म उत्पादों को जलाने से पैदा होने वाली भूमण्डलीय तपिश का असर है। 'सूपर एल नीनो' पर्यावरणीय परिघटना है जो पृथ्वी पर हो रहे अनुत्क्रमणीय (जो पलटाना जा सके) पर्यावरणीय परिवर्तन को दिखाता है। वैसे यह 'कारण' न होकर खुद भूमण्डलीय ताप के चलते पृथ्वी के महासागर-वातावरण चक्र पर पड़ने वाला प्रभाव है जो पलटकर पृथ्वी के ताप को अधिक बढ़ा देता है। महासागरीय जलधाराओं, महासागरीय ताप और हवाओं के बीच जटिल अन्तरक्रिया में प्रशान्त महासागर चक्रिय तौर पर एलनीनो-नानीनो-न्यूट्रल के तीन चरणों से गुजरता है। 'एल नीनो' (मूल स्पेनी में जिसका अर्थ है 'लड़का') समन्दर-वातावरण चक्र का ऊष्मीय चरण है जिसमें प्रशान्त महासागर का ताप सतह से बाहर निकलता है। यह पृथ्वी के तापमान को भी बढ़ाता है और धरती के अलग-अलग हिस्सों में बारिश, सूखा व तूफ़ानों को जन्म देता है। वैज्ञानिक इस परिघटना का अध्ययन कर ही रहे हैं और इसकी गतिकी की समस्त जटिलताओं को अभी भी समझा नहीं जा सका है। यह पृथ्वी की जटिल अन्तरक्रियाओं में से एक प्रक्रिया समन्दर-वातावरण चक्र का एक चरण है। जीवाश्म ईंधन को जलाने के चलते बढ़ते ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन से पृथ्वी के बढ़े तापमान की वजह से इस चक्र में भी दरारें पड़ रही हैं।

महासागर-वातावरण चक्र क्रायदे से 'चक्र' में दोलन करने की जगह कुण्डलाकार दोलन कर रहा है। इसका मतलब यह कि नया 'एल नीनो' चरण पुराने 'एल नीनो' चरण के मुक़ाबले अधिक आवर्तिता से घटित हो रहा है और अधिक विकराल रूप ले रहा है। यह तापमान वृद्धि के चलते पृथ्वी के अनुत्क्रमणीय परिवर्तन के कारण हो रहा

है। इसलिए ही मौजूदा 'एल नीनो' को कुछ वैज्ञानिकों द्वारा 'सूपर' एल नीनो कहा जा रहा है। इसके चलते धरती का तापमान 1.7 डिग्री तक बढ़ने की सम्भावना है। इससे पूरी दुनिया में ताप लहर, सूखा, बाढ़ और जंगलों में आग लगने की परिघटनाएँ बढ़ जायेंगी। आज पहले ही धरती इतनी गर्म हो चुकी है कि समन्दर की मूंगे की चट्टानों का अनुत्क्रमणीय विरंजन हो गया है, जंगल की आग में वनक्षेत्र का बड़ा हिस्सा नष्ट हो चुका है। मौसमी फसलें मौसमों से संरेखित नहीं हो रही हैं। धरती पर बढ़ते ताप की वजह से कई पौधों की प्रजातियाँ प्रकाश-संश्लेषण नहीं कर पा रही हैं। 'सूपर एल नीनो' और विनाशकारी परिणाम लाने वाला है। नासा से जुड़े रहे वैज्ञानिक हान्सेन के अनुसार 'सूपर एल नीनो' के गुज़र जाने के बाद तापमान में हुई वृद्धि पूरी तरह घटने की सम्भावना कम ही है। यह 'सूपर एल नीनो, पर्यावरणीय 'शॉक' है जो पृथ्वी की जटिल प्रक्रियाओं की व्यवस्था के अधिक भयावह चरण (मानवता के लिए) में जाने का लक्षण है।

'सूपर एल नीनो' से लेकर अन्य असामान्य प्राकृतिक परिघटनाएँ पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा प्रकृति की तबाही के चलते पैदा हो रही हैं। इस तबाही का कारण पूँजीवादी सरकारें, पूँजीपति वर्ग और यह समूची पूँजीवादी व्यवस्था है जो कुदरत और मेहनत के शोषण पर आधारित है। दुनिया भर के हुक्मरान और पूँजीवादी शहंशाह छछुन्दर-सी अन्धी पूँजी की पूँछ पकड़कर हवा, पानी, पहाड़ और मिट्टी के दोहन में लगे हैं जिससे समूची मानवता और धरती तबाही के कगार पर पहुँच रही है। निश्चित ही अमीर अपनी कोठियों में, अपने हवाई जहाज़ों, गाड़ियों के काफ़िलों में कुदरत की लूट की तबाही के सीधे चपेट में आने से बचने का हर मुमकिन बेशर्म और नग्न रास्ता निकालने की कोशिश करते रहते हैं लेकिन ये सारे प्रयास रेगिस्तान में बसाये नखलिस्तान सरीखे हैं जो रेगिस्तान में उठने वाले तूफ़ानों से नहीं बच पाते हैं। प्रेमचन्द की कहानी 'विध्वंस' की तरह जब अमीरों की ऐयाशी के चलते पैदा हुआ प्रकृति का क्रहर ग़रीबों के झोंपड़ों को जलाता है तो प्रकृति के प्रकोप में अमीरों की हवेलियाँ भी जलकर खाक हो जाती हैं! लेकिन यह कड़वा सच है कि प्रचण्ड गर्मी की मार आम तौर पर मुख्यतः मज़दूरों और ग़रीब मेहनतकश आबादी पर ही पड़ती है। इसे बदलने के लिए मज़दूरों और ग़रीब मेहनतकश आबादी को ही इस पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए कमर कसनी होगी। प्रकृति और श्रम के शोषण पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था को इतिहास के कूड़ेदान में फेंकना आज समूची मानवता और पृथ्वी को बचाने के लिए भी अनिवार्य है।

ईरान युद्ध में अमेरिकी साम्राज्यवाद घुटने टेकने पर मजबूर लेकिन पश्चिम एशिया में तबाही बदस्तूर जारी है!

● आनन्द

गत 28 फ़रवरी को ईरान पर एकतरफ़ा हमला करके साम्राज्यवादी युद्ध का आगाज़ करने के बाद से अमेरिका इस युद्ध में कभी भी जीतता हुआ नहीं नज़र आया। जैसे-जैसे युद्ध आगे बढ़ रहा था, यह स्पष्ट होता जा रहा था कि इस युद्ध में अमेरिकी साम्राज्यवाद की शर्मनाक हार होनी तय है। 17 जून को अमेरिका व ईरान के बीच एक समझौते पर दस्तखत हुए जिसमें दोनों देशों ने एक-दूसरे के ठिकानों पर सैन्य हमले रोकने पर सहमति जतायी और 60 दिन के भीतर युद्ध को पूरी तरह से समाप्त करने के लिए बातचीत जारी रहने पर रज़ामन्दी हुई। इस समझौते में अमेरिका ईरान की सभी प्रमुख शर्तों को मानने पर मजबूर हुआ। समझौते पर दस्तखत करके अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने ईरान के सामने घुटने टेक दिये हैं। अमेरिकी साम्राज्यवाद की यह शिकस्त उसके इतिहास की सबसे बड़ी शिकस्तों में से एक है। यह शर्मनाक पराजय अमेरिकी साम्राज्यवाद की पतन-यात्रा

यह समझौता ईरान की शर्तों पर हुआ। इस समझौते में अमेरिका को ईरान को ऐसी बहुत-सी रियायतें देनी पड़ीं जो वह युद्ध के पहले देने के लिए हरगिज़ तैयार नहीं था। सबसे पहले तो अमेरिका को सभी मोर्चों पर सैन्य कार्रवाई को स्थायी रूप से स्थगित करने के लिए रज़ामन्द होना पड़ा। गौरतलब है कि अमेरिका को ईरान की यह शर्त माननी पड़ी कि यह समझौता लेबनॉन के मोर्चे पर भी लागू होगा जहाँ इज़रायल पिछले 4 महीनों से लगातार तबाही मचा रहा है। समझौते में अमेरिका ने लेबनॉन की अखण्डता बरकरार रखना भी स्वीकार किया है, जो इज़रायल के लिए बहुत बड़ा झटका है क्योंकि वह दक्षिण लेबनॉन में अपने कब्जे को स्थायी बनाने की फिराक में था। समझौते में ईरान ने अपने नाभिकीय कार्यक्रम को पूरी तरह समाप्त करने की बात नहीं स्वीकारी है जो उसके पक्ष में जाता है और युद्ध से पहले भी उसकी यही अवस्थिति थी। इसके अतिरिक्त समझौते में एनरिचड यूरेनियम के

इसके अतिरिक्त समझौते में हॉर्मुज़ जलसन्धि पर ईरान के नियंत्रण को स्वीकार किया गया है। बदले में ईरान ने हॉर्मुज़ से जहाज़ों की बिना रोकटोक आवाजाही सुनिश्चित करने की बात की है। इसमें भी ईरान को कोई नई चीज़ नहीं करनी है क्योंकि युद्ध के पहले हॉर्मुज़ खुला ही हुआ था। यानी ईरान युद्ध के पहले की स्थिति बहाल करने पर तैयार हुआ है जबकि अमेरिका को कई ऐसी रियायतें देनी पड़ी हैं जो वह युद्ध के पहले नहीं देने को तैयार था। इस युद्ध में अमेरिका स्पष्ट रूप से पराजित हुआ है क्योंकि वह युद्ध के दौरान अपने किसी भी लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाया। न तो वह ईरान की सत्ता को गिराने में कामयाब रहा, न ही वह ईरान के नाभिकीय कार्यक्रम को समाप्त कर सका और मिसाइल कार्यक्रम के मामले में ट्रम्प को कहना पड़ा कि तमाम देशों की ही तरह ईरान को भी अपनी रक्षा के लिए मिसाइल कार्यक्रम जारी रखने का अधिकार है! इस प्रकार जहाँ एक ओर ईरान को इस समझौते से कई रियायतें

युद्ध के दौरान अमेरिकी साम्राज्यवाद की फ्रांस, स्पेन, इटली, जर्मनी व अन्य यूरोपीय सहयोगियों से अनबन भी स्पष्ट रूप से दिखायी दी। यहाँ तक कि ब्रिटेन ने भी उसके मनमुताबिक स्टैंड नहीं लिया। इस प्रकार नाटो में एक दरार स्पष्ट रूप से सामने आयी है। खाड़ी के देशों में भी अमेरिकी हमले के प्रति नाराज़गी है क्योंकि ईरान द्वारा इन देशों पर किये जा रहे जवाबी हमलों में काफ़ी तबाही हो रही है और युद्ध का उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर काफ़ी विपरीत असर पड़ा है। युद्ध के दौरान ही संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) तेल उत्पादक देशों के संघ ओपेक से अलग हो गया जो अमेरिका के खाड़ी देशों के साथ गठबन्धन के कमज़ोर होने की ही निशानी है। साथ ही, इस दौरान उसके सबसे कट्टर सहयोगी इज़रायल के साथ भी उसके सम्बन्धों में दरार पैदा हुई है। हत्यारे नेतन्याहू की भी इज़रायल के भीतर ज़बर्दस्त छीछालेदर हो रही है। पूरी दुनिया में जायनवादी इज़राइल और उसका क्रांतिल सरगना नेतन्याहु तो ग़ाज़ा में अपनी करतूतों की वजह से पहले ही अलग-थलग पड़ चुके थे। दुनिया भर की आम जनता फ़िलिस्तीन मुक्ति संघर्ष के साथ पहले भी खड़ी थी और आज भी खड़ी है। दूसरी तरफ़ चीन व रूस के नेतृत्व वाला दूसरा साम्राज्यवादी धड़ा पहले से ज़्यादा ताक़तवर बनकर उभरा है और उसका प्रभुत्व बढ़ता दिख रहा है। ईरान में अमेरिका की हार का एक बड़ा कारण ईरान को चीन व रूस द्वारा दिया गया सहयोग भी था। ईरान और अमेरिका के बीच हुए समझौते में भी चीन के सहयोगी पाकिस्तान ने मध्यस्थ के रूप में अहम भूमिका निभायी। अब यह दिन के उजाले की तरह साफ़ हो गया है कि अमेरिकी साम्राज्यवाद का सूरज अस्त हो रहा है। ट्रम्प की सनक इस ढलते हुए अमेरिकी साम्राज्यवाद की बौखलाहट की ही निशानी है।

साम्राज्यवाद के इतिहास में हम एक ऐसे दौर के गवाह बन रहे हैं जब एक साम्राज्यवादी धड़ा कमज़ोर हो रहा है और दूसरा धड़ा लगातार मजबूत होता जा रहा है। इतिहास गवाह है कि जब भी साम्राज्यवादी समीकरण में बदलाव आते हैं तब साम्राज्यवादी दुनिया में उथल-पुथल, उलटफेर, अनश्चितता, अस्थिरता, युद्धोन्माद और हिंसा बढ़ती है। इस समय पश्चिम एशिया व ईरान में जारी उथल-पुथल को साम्राज्यवाद के समीकरणों में आ रहे बदलावों की रोशनी में देखने की ज़रूरत है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस अस्थिरता का ख़ामियाज़ा केवल पश्चिम एशिया की जनता को ही नहीं बल्कि समूची दुनिया की मेहनतकश अवाम को भुगतना पड़ रहा है। ईरान युद्ध के बाद पैदा हुआ ऊर्जा संकट और जीवन-यापन का संकट केवल ईरान या पश्चिम एशिया ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया को प्रभावित कर रहा है। तेल की कीमतों में उछाल से भारत जैसे देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर सीधा असर हो रहा है जो तेल के आयात पर निर्भर हैं। भविष्य में भी साम्राज्यवादी संकट के गहराने, बढ़ती अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा और हिंसा व अस्थिरता के बढ़ने के ही आसार हैं। संकट व अनिश्चितता की यह परिस्थिति विश्व के विभिन्न हिस्सों में पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के विरुद्ध बढ़ते संघर्षों को जन्म दे रही है और आने वाले दिनों में मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तन की परिस्थितियाँ भी तैयार होनी तय हैं। इस वस्तुगत परिस्थिति के मद्देनज़र आज दुनियाभर में मज़दूर वर्ग की पार्टी के रूप में क्रान्ति की मनोगत शक्ति की ज़रूरत पहले से कहीं ज़्यादा अहम है। आज भारत समेत दुनिया भर के तमाम देशों में मज़दूर वर्ग और उसके हिरावल तत्त्वों के समक्ष उपस्थित यह सबसे अहम कार्यभार भी है।



में एक अहम पड़ाव है। हालाँकि जुलाई की शुरुआत से युद्ध के फिर से शुरू होने की वजह से यह समझौता खटाई में पड़ गया है, परन्तु इतना तय है कि अमेरिका की हार को अब जीत में नहीं तब्दील किया जा सकता है। युद्ध के फिर से जारी होने के बाद समूचे पश्चिम एशिया में जारी तबाही और बर्बादी और बढ़ने वाली है। गौरतलब है कि अब तक इस युद्ध में ईरान में 3,600 से ज़्यादा लोग मारे जा चुके हैं, जबकि लेबनॉन में 4,000 से ज़्यादा लोगों को जायनवादी इज़रायल मौत के घाट उतार चुका है।

17 जून को अमेरिका और ईरान के बीच हुए समझौते को अमेरिकी आत्मसमर्पण का दस्तावेज़ कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। वजह यह कि

विवादास्पद प्रश्न पर सहमति के लिए दोनों पक्षों को 60 दिन का समय दिया गया है। ऐसी कोई सहमति बनने पर अमेरिका ने ईरान में 300 अरब अमेरिकी डॉलर के निवेश और ईरान पर लगे सभी प्रतिबन्धों को हटाने का वायदा किया है। यही नहीं, समझौते में ईरान पर कच्चे तेल व पेट्रोलियम उत्पादों के निर्यात पर लगी रोक को हटा लिया गया है। यह भी ईरान की जीत को दर्शाता है क्योंकि युद्ध से पहले ईरान ऐसे किसी अमेरिकी वायदे की कल्पना भी नहीं कर सकता था। इसके अलावा अमेरिका ने ईरान की अवरुद्ध विदेशी परिसम्पत्तियों को भी रिलीज़ करने पर सहमति जतायी है जिसकी कल्पना युद्ध के शुरू होने से पहले नहीं की जा सकती थी।

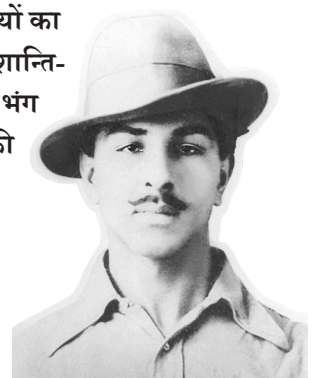
मिली हैं, वहीं अमेरिका को इस युद्ध से शर्मनाक हार के अलावा कुछ भी नहीं हाथ लगा है। अब जबकि समझौते को तोड़ते हुए अमेरिका एक बार फिर से ईरान पर हमले कर रहा है तो यह उसकी बौखलाहट का ही एक और नज़ारा है।

ईरान युद्ध में अमेरिकी साम्राज्यवाद की शिकस्त को विश्व पटल पर उसके घटते हुए प्रभुत्व की निरन्तरता में ही देखा जाना चाहिए। इस युद्ध में ट्रम्प के नेतृत्व में अमेरिकी साम्राज्यवाद का पतन और ज़्यादा स्पष्ट दिख रहा है। किसी भी ढलते हुए साम्राज्यवादी मुल्क की ही तरह अमेरिकी साम्राज्यवाद अपने पतन के दौर में और ज़्यादा खूँखार और आक्रामक होता दिख रहा है। साथ ही उसके साम्राज्यवादी गठबन्धन में दरारें भी स्पष्ट रूप से दिखायी दे रही हैं। ईरान

ए साम्राज्यवाद मनुष्य के हाथों मनुष्य के और राष्ट्र के हाथों राष्ट्र के शोषण का चरम है। साम्राज्यवादी अपने हितों, और लूटने की योजनाओं को पूरा करने के लिए न सिर्फ़ न्यायालयों एवं क़ानून को क़त्ल करते हैं, बल्कि भयंकर हत्याकाण्ड भी आयोजित करते हैं। अपने शोषण को पूरा करने के लिए जंग जैसे ख़ौफ़नाक अपराध भी करते हैं। जहाँ कहीं लोग उनकी नादिरशाही शोषणकारी माँगों को स्वीकार न करें या चुपचाप उनकी ध्वस्त कर देने वाली और घृणा योग्य साज़िशों को मानने से इन्कार कर दें तो वह निरपराधियों का खून बहाने से संकोच नहीं करते। शान्ति-व्यवस्था की आड़ में वे शान्ति-व्यवस्था भंग करते हैं। भगदड़ मचाते हुए लोगों की हत्या, अर्थात् हर सम्भव दमन करते हैं।"

• 5 मई 1930

(विशेष टिब्यूनल, लाहौर साज़िश केस, लाहौर के सामने भगतसिंह और उनके साथियों का बयान)



ग्रेट निकोबार परियोजना : विकास के नाम पर प्राकृतिक सम्पदा के दोहन के लिए पूँजीपतियों को खुली छूट

● विवेक

देश की प्राकृतिक सम्पदा को मुड़ी भर पूँजीपतियों को सुपुर्द करने की अपनी घोषित नीति को जारी रखते हुए केन्द्र में सत्तासीन भाजपा सरकार ग्रेट निकोबार द्वीप के जंगलों और तट को भी मुनाफ़े की भेंट चढ़ाने पर अमादा है। हम देख चुके हैं कि पिछले एक दशक में देश में प्राकृतिक सम्पदा के दोहन में जबरदस्त वृद्धि हुई है। हसदेव वन्य क्षेत्र, महान के जंगल और अरावली की पहाड़ियों का काटा जाना: न जाने ऐसे कितने ही उदारहण हैं जहाँ बड़े पैमाने पर खनन, पेड़ों की कटाई और इन्फ्रास्ट्रक्चर निर्माण के नाम पर लाखों की संख्या में पेड़ काट कर पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुँचाया गया है। इसके फलस्वरूप इन वन्य क्षेत्रों में रहने वाले पशु-पक्षियों की प्रजातियों को नुकसान पहुँचा है, यहाँ तक कि इन वन्य क्षेत्रों पर आश्रित स्थानीय आबादी को भी विस्थापित होना पड़ा है। इन स्थानों पर पारिस्थितिकी तंत्र को इस हद तक नुकसान पहुँचा है कि इसकी भरपाई कर पाना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

ग्रेट निकोबार परियोजना की ज़मीनी हकीकत

ग्रेट निकोबार द्वीप मलक्का जलडमरूमध्य (स्ट्रेट ऑफ मलक्का) से महज 65 किलोमीटर की दूरी पर है। इस द्वीप के 80 फ़ीसदी भूभाग को यूनेस्को द्वारा संरक्षित बायोस्फ़ियर के रूप में नामित किया गया है। सनद रहे कि मलक्का जलडमरूमध्य विश्व के सबसे महत्वपूर्ण समुद्री संकीर्ण मार्गों में से एक है। यह हिन्द महासागर को दक्षिण चीन सागर से जोड़ता है। भारत का 55% से अधिक व्यापार इसी समुद्री मार्ग से होकर गुजरता है। केन्द्र सरकार का दावा है कि मलक्का जलडमरूमध्य से गुजरने वाले समुद्री मार्ग पर अपनी रणनीतिक और सामरिक अवस्थिति मज़बूत करने के लिहाज़ से ग्रेट निकोबार परियोजना का महत्व है। इस द्वीप के करीब 166 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में लगभग 30 वर्षों में चरणबद्ध तरीके से निर्माण कार्य किये जाएँगे जिसके अन्तर्गत गलाथिया खाड़ी के क्षेत्र में एक अन्तरराष्ट्रीय कण्टेनर ट्रांसशिपमेण्ट टर्मिनल और एक नागरिक सह सैन्य हवाई अड्डे का निर्माण किया जायेगा। इन सबके अतिरिक्त एक विद्युत संयंत्र का भी निर्माण किया जायेगा तथा कालांतर में साढ़े तीन लाख लोगों के लिहाज़ से टाउनशिप विकसित की जायेगी। इस परियोजना की लागत करीब 81,000 करोड़ रुपये है। ध्यान रहे कि ये सारे निर्माण कार्य उस क्षेत्र में होंगे जो घने वर्षा वन से घिरा हुआ है, जहाँ लाखों की तादाद में पेड़ हैं तथा जो 1700 से अधिक प्रजातियों का निवास स्थल है। कुछ समय पहले संसद में पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने यह स्वयं माना था कि इस परियोजना के

कारण लगभग 9.64 लाख पेड़ काटे जाएँगे। हालाँकि कई पर्यावरणविद सरकार द्वारा प्रस्तुत किये गये दावों से सहमत नहीं हैं। पर्यावरणविदों के अनुसार ग्रेट निकोबार के कुछ हिस्सों में वन का घनत्व सरकार द्वारा अपनी रिपोर्ट में लगाये गये अनुमान से कहीं अधिक है। इसलिए, यदि अधिक घने वन क्षेत्रों की कटाई होती है, तो वास्तव में प्रभावित या काटे जाने वाले पेड़ों की संख्या सरकारी अनुमान से 6 से 10 गुना तक ज़्यादा हो सकती है। अँग्रेज़ी न्यूज़ पोर्टल 'द स्क्रोल' में अक्तूबर 2024 के दौरान छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक काटे जाने वाले पेड़ों की संख्या 65 लाख से एक करोड़ तक हो सकती है। इतनी बड़ी संख्या में पेड़ काटे जाने पर मृदा अपरदन भी होगा जिससे मृदा की उर्वरता घटेगी और ज़मीन के कटाव का खतरा भी उत्पन्न होगा। लेकिन नुकसान केवल इस द्वीप के वन्य क्षेत्रों को ही नहीं झेलना होगा, बल्कि द्वीप के निकट समुद्र के छिछले तल पर स्थित प्रवाल भित्तियों (कोरल

करने का कोई ठोस आधार नहीं है! जी हाँ, यह एनजीटी द्वारा की गयी टिप्पणी है, वह संस्था जिसे देश की प्राकृतिक सम्पदा के संरक्षण के लिए बनाया गया था, वह धृतराष्ट्र बनकर आँखों पर पट्टी बाँधे सरकार की हाँ में हाँ मिला रही है!

ग्रेट निकोबार द्वीप की जनजातीय आबादी के साथ सरकार छल कर रही है!

वन्य अधिकार अधिनियम (FRA), 2006 के तहत ऐसी किसी भी परियोजना के लिए उस क्षेत्र की स्थानीय जनजातियों से सहमति लेनी पड़ती है। लेकिन ग्रेट निकोबार प्रोजेक्ट के मामले में यह प्रक्रिया पूरी तरह से सन्देह के दायरे में है। पर्यावरणविदों और जनजातीय संगठनों का कहना है कि ग्राम सभाओं में आवश्यक 50% उपस्थिति सुनिश्चित किये बग़ैर भूमि हस्तांतरण की प्रक्रिया आगे बढ़ायी गयी। निकोबार ट्राइबल काउंसिल द्वारा वर्ष 2022 में दिये गये अपने अनापत्ति प्रमाण पत्र (NOC) को



रीफ़) के अस्तित्व पर भी संकट आ जायेगा। प्रवाल भित्तियाँ केवल जैव विविधता का केन्द्र नहीं हैं, बल्कि वे समुद्री लहरों की ऊर्जा को कम करके तटों को कटाव, चक्रवात और सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाओं से भी सुरक्षा प्रदान करती हैं। इनके क्षरण से द्वीप की प्राकृतिक सुरक्षा कमज़ोर हो जाने की सम्भावना है। प्रस्तावित अन्तरराष्ट्रीय ट्रांसशिपमेण्ट पोर्ट के निर्माण के लिए समुद्र तल की खुदाई के कारण प्रवाल भित्तियों को नुकसान पहुँचेगा। इसकी पूरी सम्भावना है कि तट के निकटवर्ती इलाक़ों में पाये जाने वाली प्रवाल भित्तियाँ पूर्णतया समाप्त ही हो जायें। ग्रेट निकोबार द्वीप पाँचवीं श्रेणी के भूकम्पीय क्षेत्र (सेस्मिक ज़ोन) में स्थित है, जो देश में भूकम्प के जोखिम की सबसे उच्च और गम्भीर श्रेणी है। इसके कारण यह क्षेत्र तीव्र भूकम्पों, सुनामी तथा तटीय भूमि के धँसने जैसी प्राकृतिक आपदाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है। ऐसी स्थिति में इतनी बड़ी परियोजना का निर्माण भविष्य में ख़तरनाक हो सकता है। लेकिन, इतनी सारी समस्याएँ होने के बावजूद भी एनजीटी (नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल) ने ग्रेट निकोबार परियोजना को मंजूरी देते हुए कहा कि इसके राष्ट्रीय रणनीतिक महत्व को देखते हुए हस्तक्षेप

वापस लेते हुए परियोजना का विरोध किया था और अपनी भूमि पर इस तरह के निर्माण कार्य का विरोध जताया था। स्थानीय जनजातीय परिषद का आरोप है कि सरकारी एजेंसियों और अफ़सरों द्वारा लोगों पर ज़मीन देने से जुड़े दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर करने का दबाव डाला गया। स्थानीय जनजातीय समुदायों ने कोलकाता उच्च न्यायालय में दायर याचिकाओं में आरोप लगाया है कि इस परियोजना के लिए ग्राम सभा की अनिवार्य सहमति और अन्य क़ानूनी प्रक्रियाओं का पालन नहीं किया गया था। ग्रेट निकोबार द्वीप पर रहने वाली दो प्रमुख जनजातियाँ शोम्पेन और निकोबारी लोगों के लिए अब यह अस्तित्व का प्रश्न बन चुका है क्योंकि उनकी आजीविका और संस्कृति इन्हीं वनों और तटों पर आधारित है।

क्षतिपूर्ति के नाम पर खोखले उपाय

ग्रेट निकोबार परियोजना के कारण होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए केन्द्र सरकार ने कुछ उपाय भी प्रस्तावित किये हैं जिनमें से एक है प्रतिपूरक वनीकरण यानी जितने पेड़ काटे जाएँगे उतने ही पेड़ किसी अन्य क्षेत्र में लगाये जाएँगे। इसके तहत सरकार अनुमानित 8.5 लाख से 10 लाख पेड़ों की क्षतिपूर्ति के लिए

हरियाणा और मध्य प्रदेश में करीब 24,000 हेक्टेयर से अधिक भूमि पर वृक्षारोपण करेगी! काग़ज़ों पर तो यह उपाय करगार लगता है लेकिन वास्तविकता एकदम विपरीत है। ये पेड़ हरियाणा और मध्य प्रदेश जैसे शुष्क इलाकों में लगाये जायेंगे जो ग्रेट निकोबार द्वीप के उष्णकटिबंधीय द्वीपीय वर्षावन से जलवायु, मृदा और जैव विविधता की दृष्टि से पूरी तरह भिन्न हैं। ग्रेट निकोबार में कई ऐसे पेड़ काटे जायेंगे, जो केवल उसी इलाके में उगते हैं और उनके काटे जाने की भरपाई किसी सुदूर क्षेत्र में नये पेड़ लगाकर नहीं की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, ग्रेट निकोबार के वन सैकड़ों वर्षों में विकसित हुए प्राकृतिक वर्षावन हैं, इनके काटे जाने की भरपाई इन खोखले उपायों से नहीं की जा सकती है। दूसरी तरफ़ समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव कम करने के लिए ज़ूओलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इण्डिया ने प्रवाल भित्ति क़ॉलोनियों को परियोजना निर्माण वाले इलाके से हटाकर अन्य स्थानों पर स्थानांतरित करने का प्रस्ताव दिया था। हालाँकि इतनी बड़ी संख्या में प्रवाल भित्तियों की पूरी क़ॉलोनी को स्थानांतरित करना असम्भव प्रतीत होने वाला कार्य है। स्थानांतरण की प्रक्रिया में वे बचे रह पाएँगे या नहीं, जहाँ उन्हें स्थानांतरित किया जायेगा वहाँ वे पनप पाएँगे या नहीं, इस पर काफ़ी संशय है।

इस परियोजना के पीछे मोदी सरकार की असली मंशा क्या है?

करीब पाँच साल पहले वर्ष 2021 में नीति आयोग द्वारा ग्रेट निकोबार प्रोजेक्ट के लिए मंजूरी दी गयी थी, तब से लेकर आज तक इस परियोजना के औचित्य के सन्दर्भ में मोदी सरकार के बयान बदलते रहे हैं। शुरुआती दौर में इस परियोजना को निकोबार द्वीप की गलाथिया खाड़ी में एक अन्तरराष्ट्रीय वाणिज्यिक ट्रांसशिपमेण्ट हब के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था, जिसका उद्देश्य सिंगापुर, कोलंबो और पोर्ट क्लॉंग जैसे विदेशी बन्दरगाहों पर निर्भरता कम करना था। लेकिन तुरन्त ही मोदी सरकार ने अपनी अवस्थिति बदलते हुए इसे राष्ट्रीय महत्व वाली एक रणनीतिक परियोजना बताया। परियोजना को रणनीतिक घोषित किये जाने के बाद सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा का हवाला देते हुए इससे जुड़े दस्तावेज़ों और सूचनाओं को 'सूचना का अधिकार' के तहत सार्वजनिक करने से इंकार कर दिया। टीवी न्यूज़ चैनलों पर स्वघोषित सुरक्षा विशेषज्ञ इस परियोजना को भारत द्वारा चीन के हिन्द महासागर में बढ़ते प्रभाव को क़ाबू करने की दिशा में उठा क़दम बता रहे थे। इस परियोजना को ऐसे प्रस्तुत किया जा रहा था कि यह भारत के लिए रणनीतिक दृष्टिकोण से इतनी महत्वपूर्ण है कि इसके लिए कुछ लाख पेड़ और सैकड़ों दुर्लभ प्रजातियों को

कुर्बान किया जा सकता है।

अब सवाल यह उठता है कि अगर यह परियोजना रणनीतिक और सामरिक दृष्टिकोण से इतनी महत्वपूर्ण है कि इससे जुड़ी जानकारियों को देश की जनता के साथ साझा नहीं किया जा सकता है तो फिर क्यों मोदी सरकार ने एक निजी कम्पनी से इस परियोजना की रूपरेखा तैयार करवायी और क्यों इस परियोजना का निर्माण निजी सेक्टर के सहयोग से किया जा रहा है? दूसरा, अगर रणनीतिक दृष्टिकोण से यह द्वीप इतना संवेदनशील है तो आखिर क्यों सरकार इस द्वीप पर लगभग 3.5 लाख (3,50,000) लोगों के बसने के लिए नये शहर के निर्माण की बात करती है? ऐसे कई सारे अन्तरविरोध हैं, जो खुद मोदी सरकार द्वारा ग्रेट निकोबार प्रोजेक्ट के सन्दर्भ में बार-बार बदलते बयानों के कारण सामने आये हैं। इस महत्वाकांक्षी परियोजना के पीछे मोदी सरकार की मंशा को समझना है तो हमें बस भाजपा के चुनावी घोषणापत्र को देखना होगा। भाजपा ने साल 2014 के अपने चुनावी घोषणापत्र में पर्यावरण से सम्बन्धित पूरे हिस्से को ही 'उद्योग' के अन्तर्गत रखा था! सीधे शब्दों में कहें तो भाजपा और मोदी सरकार की नज़र में पर्यावरण का महत्व दरअसल पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने और उनके मुनाफ़े के लिए है चाहे इसके लिए प्रकृति का किसी भी हद तक दोहन क्यों न करना पड़े! इसके बाद वर्ष 2019 के घोषणापत्र में भाजपा ने उद्योगों के लिए प्राकृतिक सम्पदा के दोहन की स्वीकृतियाँ जारी करने की प्रक्रिया में तेज़ी को अपनी सरकार की एक प्रमुख उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत किया था। भाजपा के मुताबिक उसने पूँजीपतियों को पर्यावरण संरक्षण क़ानूनों के जंजाल से बचा कर उनके लिए धंधा करना आसान बना दिया है! दरअसल ग्रेट निकोबार परियोजना के अन्तर्गत मोदी सरकार द्वारा आदिम संचय की वही प्रक्रिया चलाये जाने की असल मंशा है जिसके चलते न सिर्फ़ कुदरत की भयंकर लूट मचायी जायेगी बल्कि वहाँ की जनजातियों और निवासियों को भी उनके जल-जंगल-ज़मीन से उजाड़ने का काम किया जायेगा और उन्हें सर्वहारा की क़तारों में शामिल होने के लिए मजबूर किया जायेगा।

मोदी सरकार की इन्हीं पूँजीपरस्त नीतियों का नतीजा है कि वर्ष 2023-24 में लगभग 29,000 हेक्टेयर वन भूमि को अन्य उपयोगों के लिए हस्तांतरित किया गया जो पिछले एक दशक में सबसे अधिक था। वर्ष 2014 से अब तक देशभर में इन्फ्रास्ट्रक्चर परियोजनाओं के नाम पर 1.6 करोड़ से अधिक पेड़ों की कटाई की जा चुकी है। ग्रेट निकोबार परियोजना के सम्बन्ध में भी यही हो रहा है: नियमों को ताक पर रखकर मुड़ीभर पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बरकरार रखने के लिए देश की प्राकृतिक सम्पदा के दोहन की खुली छूट दी जा रही है। जाहिर है (पेज 14 पर जारी)

हीरक राजा फ़रमान, करो सब जय गान! विरोध करना अपमान, लागू हुआ रॉलेट एक्ट का नया विधान!

पश्चिम बंगाल में भाजपा के सत्तासीन होते ही राजनीतिक विरोध की आवाज़ों को दबाने के लिए लाया गया क़ानून!

● प्रियम्बदा

सत्यजीत रे द्वारा 1980 में बनायी गयी फ़िल्म 'हीरक राजार देशे' के राजा को यह बिल्कुल पसन्द नहीं था कि उससे कोई सवाल करे, उसका कोई मज़ाक उड़ाये और विरोध तो कतई करने की ज़रूरत न करे! तानाशाह राजा को यह भय सताता था कि अगर किसी एक ने भी उससे प्रश्न किया या उसके विरोध में बोला तो धीरे-धीरे सभी ऐसा करने लग जायेंगे और उसका राज सिंहासन ख़तरे में आ जायेगा। इसलिए उसने अपने विरोधियों को चुप कराने के काम को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए उसे फ़ौरन लागू करने का आदेश दिया!

ठीक कुछ ऐसा ही हुआ है बीते दिनों पश्चिम बंगाल में! पश्चिम बंगाल के सिंहासन पर विराजमान होते ही फ़ासिस्ट महाराज ने चैन की नींद सोने की उम्मीद में सबसे पहले ऐसा ही विधान लाने का काम किया जिससे कि प्रजा में कोई भी महाराज के खिलाफ़ बोलने की भूल न करे! जिस क़ानून को मुख्यमंत्री शुभेन्दु अधिकारी ने आते ही पास करवाया है वह क़ानून असहमति की हर आवाज़ को चुप कराने की ताक़त रखता है। यह क़ानून लोगों के बुनियादी जनवादी और नागरिक अधिकारों से उनको वंचित

करता है। 29 जून 2026 को विधान सभा में पारित किये गये इस नये क़ानून का नाम है 'पब्लिक सेफ्टी एण्ड कन्ट्रोल ऑफ़ एण्टी-सोशल एक्टिविटीज़ बिल 2026'। वैसे तो यह क़ानून हीरक राजा का वही "टूलकिट" है जिसे साल 2014 से हर राज्य में अलग-अलग नामों से स्थापित किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, दिल्ली जैसे राज्यों में यह पहले से ही अस्तित्वमान है। हालाँकि पश्चिम बंगाल में नये ज़ामे में लाये गये इस क़ानून में राजा के सारे औज़ार पुराने हैं। मालूम हो कि 'पब्लिक सेफ्टी एण्ड कन्ट्रोल ऑफ़ एण्टी-सोशल एक्टिविटीज़ बिल 2026' लागू होने के बाद से किसी भी व्यक्ति को "समाज के लिए ख़तरा" बता कर, महज़ शक़ के आधार पर कम से कम एक साल तक के लिए जेल में रखा जा सकता है। उस व्यक्ति को इस दौरान कोई भी क़ानूनी अधिकार प्राप्त नहीं होगा और यहाँ तक कि उसकी सम्पत्ति भी ज़ब्त की जा सकती है। पुलिस को इस क़ानून का इस्तेमाल करने की अनुमति लेने के लिए कोर्ट-कचहरी भी जाने की आवश्यकता नहीं है। पुलिस विभाग के उच्च अधिकारी या ज़िला अधिकारी की अनुशंसा पर इस क़ानून के तहत किसी को भी सीधे कैद किया जा सकता है।

यह कुछ और नहीं बल्कि यूएपीए, एनएसए जैसे काले क़ानूनों का ही एक ‘अपडेटेड वर्जन’ है। अंग्रेज़ भी ठीक इसी तरह का क़ानून लेकर आये थे जिसका नाम रॉलेट एक्ट था। रॉलेट एक्ट का मक़सद ही यही था कि देश में अंग्रेज़ों के विरुद्ध होने वाली कार्रवाइयों पर रोक लगाना, राजनीतिक विरोध की आवाज़ को कुचलकर रख देना। आज सत्ता में विराजमान अंग्रेज़ो के चाटुकार भी अपने विरुद्ध उठने वाली आवाज़ को ख़त्म करने के लिए ज़ोर-शोर से ऐसे काले क़ानून हर जगह ही अमल में ला रहे हैं। ‘प्रिवेण्टिव डिटेंशन’ (निवारक निरोध/नज़रबन्दी) के नाम पर लागू पुराने क़ानूनों मसलन एनएसए के मामलों में हम यह साफ़ तौर पर देख सकते हैं कि इनका इस्तेमाल राजनीतिक विरोध की आवाज़ को दबाने के लिए किया गया है। 70 फ़ीसदी से अधिक मामलों में पुलिस लोगों के दोष साबित नहीं कर पायी है।

मगर मुख्यमंत्री शुभेन्दु अधिकारी ने इस क़ानून को लागू करने के पीछे तर्क देते हुए यह कहा कि "असामाजिक तत्वों पर कार्रवाई के लिए पहले से कोई क़ानून बंगाल में मौजूद नहीं था और इस नये क़ानून के आने के बाद से ऐसे लोगों पर

शिकंजा कसेगा जो समाज के लिए ख़तरा हैं।" साथ ही, उन्होंने इस बात पर भी प्रकाश डाला कि "इस क़ानून का इस्तेमाल किसी को भी राजनीतिक रूप से प्रताड़ित करने के लिए नहीं किया जाएगा।"

अधिकारी जी चाहे कितना ही उपरोक्त बात पर प्रकाश डालें मगर पिछले 12 साल का इतिहास यह बताता है कि भाजपा सरकार के नेता-मंत्रियों ने जो बात कही है, हुआ उसका ठीक उल्टा है! आप चाहे 2014 के “अच्छे दिनों” के वायदों को देख लें, नोटबन्दी के “फ़ायदों” को देख लें, 2 करोड़ रोज़गार, महंगाई की मार, न खाऊंगा न खाने दूंगा की हकीक़त से लेकर गिरते रुपये की असलियत देख लें तो आपको समझने में शायद ही देर लगे कि अगर भाजपा का कोई व्यक्ति किसी बात को सच और फायदेमन्द बता रहा है तो वह बात पक्का झूठ और नुक़सानदेह है!

आप अगर हीरक राजा के मस्तिष्क प्रक्षालन यंत्र के शिकार नहीं बने हैं यानी गोदी मीडिया और व्हाट्सएप से जानकारी नहीं हासिल करते हैं तो आपके समझ में यह भी आ जायेगा कि भाजपा राज में "असामाजिक तत्व" या "समाज और देश के लिए ख़तरा" कौन

लोग हैं, जिसकी तरफ़ शुभेंदु महाराज इशारा कर रहे हैं!

नये क़ानून की परिभाषा में वे सभी लोग समाज और देश के लिए ख़तरा होंगे जो अपने हक़ की बात करेंगे, जो अन्याय को चुपचाप सहने से इंकार कर देंगे, जो सच कहेंगे! भाजपा के राजपाठ में किसी भी तरह के खलल डालने वाले को “देशद्रोही”, “नक्सलवादी”, “पाकिस्तानी” करार दिया जायेगा और राजपाठ के भले की ख़ातिर उसे सलाखों के पीछे भेज दिया जायेगा! इसलिए अगर पेपर लीक हो रहा है, महंगाई बढ़ रही है, मज़दूरी नहीं बढ़ रही है, घोटाले और भ्रष्टाचार की तूती बोल रही है, रुपया दिन-ब-दिन लुढ़कता जा रहा है, देश की सम्पत्ति कौड़ियों के भाव अम्बानी-अडानी समेत समस्त पूँजीपति वर्ग को भेंट की जा रही है, आपका जीना मुहाल हो रहा है तो यह मान लीजिये कि इसमें ज़रूर देश का कुछ न कुछ भला होगा और बिना सवाल किये पेट पर पट्टी बाँध कर त्याग करने के लिए तैयार रहिये! अगर आप ऐसा नहीं करते हैं तो आपके लिए नये क़ानून में सारे प्रावधान है जिससे कि आप “असामाजिक” और “देशद्रोही” करार दे दिये जायेंगे!

एसआईआर (SIR) के दवाब में अमानवीय परिस्थितियों में काम करती दिल्ली की आँगनवाड़ी और आशा कर्मी!

● दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन

दिल्ली में एसआईआर की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। इसके लिए ज़मीनी स्तर पर लोगों के घर-घर जाकर उनकी जानकारीयाँ इक्कठा करने के काम में आँगनवाड़ी और आशाकर्मियों को भी लगाया गया है। अपने नियमित कार्यों के अलावा उन्हें एसआईआर का काम पूरा करना है। यानी इस काम के लिए कोई कार्यदिवस या काम के घण्टे तय नहीं है। इसके लिए उन्हें एक महीने का समय दिया गया है यानी जुलाई महीने के अन्त तक उन्हें अपनी रिपोर्ट सौंपनी है। काम पूरा करने का दबाव इतना है कि हर दिन तक्ररीबन उन्हें 12-15 घण्टे काम करना पड़ रहा है। भीषण गर्मी से लेकर बरसात में लगातार काम करने की वजह से कई महिलाकर्मि बीमार पड़ रहीं हैं और उनकी सेहत पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। आँगनवाड़ी और आशाकर्मियों की कार्यस्थितियों पर एक नज़र डालें तो हमें इस बात को समझने में देर नहीं लगेगी कि वे आधुनिक गुलामों की नयी फ़ौज हैं जो बेगार खटने के लिये “आज़ाद” हैं। आँगनवाड़ीकर्मियों और आशा वर्कर्स को सरकार वॉलण्टियर्स यानी स्वयंसेविका का नाम देती है और इसलिए उन्हें वेतन की जगह मानदेय और प्रोत्साहन राशि दी जाती है। मगर इन स्वयंसेविकाओं से इनके तय काम के अलावा सैकड़ों अन्य काम लिए जाते हैं। मालूम हो कि आँगनवाड़ीकर्मियों का

मुख्य काम बच्चों को प्राथमिक शिक्षा और पोषण देने का होता है। इसके साथ ही गर्भवती महिलाओं और लाभार्थियों के स्वास्थ्य के देखभाल का काम भी उनके प्रमुख कामों में से एक है। लेकिन इन तय कामों के अलावा आँगनवाड़ी में कार्यरत महिलाओं से और भी कई काम करवाये जाते हैं। इलाक़े में जानवरों के सर्वे से लेकर आधार सर्वे तक इन "स्वयंसेविकाओं" से जबरन कराया जाता है। तमाम सरकारी योजनाओं के लिए ज़मीनी स्तर पर तथ्य जुटाने का काम भी इनको ही सौंपा जाता है। इस वक़्त एसआईआर के सर्वे का काम भी इन महिलाकर्मियों को दिया गया है। वहीं आशाकर्मियों का मुख्य काम बुनियादी जनस्वास्थ्य व्यवस्था को लोगों के घरों तक पहुँचने का है जिसके तहत उन्हें कई तरह के काम करने पड़ते हैं मसलन, जनस्वास्थ्य के प्रति लोगों को शिक्षित और जागरूक करने से लेकर घर-घर बुनियादी चिकित्सा पहुँचाना। इनके लिये न तो कार्यदिवस तय होते हैं और न काम के घण्टे। मामूली मानदेय और इन्सेंटिव पर काम कर रही इन महिलाओं को तय काम के अलावा कई अन्य काम करने पड़ते हैं। सर्दी, गर्मियों से लेकर बरसात तक में इन्हें अपने कार्यक्षेत्र में मौजूद होना होता है। काम का दबाव इतना है कि तपती दुपहरी हो या बारिश का मौसम, इन्हें लोगों के घर जाकर अपना काम पूरा करना होता है। कोविड जैसी महामारी के दौर में भी आँगनवाड़ी और आशा

कर्मियों को बिना किसी सुरक्षा उपकरण के काम करना पड़ा था जिसकी वजह से कई कार्यकर्ताओं की मौत भी हो गयी थी। यह जानकर ताज़्जुब होगा कि इस महंगाई के दौर में आशाकर्मी तीन हजार रुपये की मामूली प्रोत्साहन राशि पर काम करने के लिये मजबूर हैं वहीं आँगनवाड़ीकर्मियों को 6 हजार और 12 हजार का मानदेय मिलता है जोकि कभी समय पर नहीं आता है। छुट्टी माँगने या अतिरिक्त काम करने से मना करने पर काम से तुरन्त निकालने का प्रावधान है।

एसआईआर शुरू होने के बाद से इन महिलाकर्मियों का वर्कलोड दोगुना हो गया है। मालूम हो कि एक बीएलओ के ऊपर तक्ररीबन 1000 से अधिक घरों के सर्वे की ज़िम्मेदारी होती है। हर एक घर में इन्हें कम से कम तीन बार तो जाना ही होता है। लेकिन यह देखा गया है कि आमतौर पर उन्हें तीन बार से अधिक ही जाना पड़ता है क्योंकि कई बार मतदाता बीएलओ के समयानुसार उन्हें नहीं मिलते हैं। पहले से ही अतिरिक्त काम के बोझ से जूझती आशा और आँगनवाड़ीकर्मियों के ऊपर एसआईआर का बोझ उन्हें बद से बदतर कार्यस्थिति में काम करने की ओर धकेल रहा है।

यह पहली बार नहीं हुआ है। स्पेशल इंटेसिव रिविज़न (SIR) के काम को पूरा करने का दवाब इससे पहले अन्य राज्य में आँगनवाड़ी, आशाकर्मी और सरकारी स्कूल के शिक्षक झेल चुके हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात,

राजस्थान, पश्चिम बंगाल से लेकर केरल और तमिलनाडु में हुए एसआईआर के दौरान कई लोगों को न सिर्फ़ शारीरिक और मानसिक परेशानियों से गुज़रना पड़ा बल्कि कई तो आत्महत्या तक करने के लिए मजबूर कर दिये गये।

हमें भाजपा सरकार द्वारा लागू किये गये इस एसआईआर का सच भी जानना चाहिए। जिस सरकार को लोगों की वेतन बढ़ोतरी का ख़्याल नहीं आता है, बेरोज़गारी दूर करने की याद नहीं आती है, शिक्षा व्यवस्था को बेहतर करने, परीक्षाओं में धांधली रोकने का ख़्याल नहीं आता है, उस सरकार की अचानक एसआईआर में इतनी दिलचस्पी कैसे और क्यों पैदा हो रही हैं? असल में एसआईआर से सिर्फ़ भाजपा का भला होने वाला है, जनता का इससे दूर-दूर तक कोई फ़ायदा नहीं है। वास्तव में देखा जाये तो यह समूची जनता के खिलाफ़ उठाया जा रहा क्रदम है। एक बड़ी आबादी से उनके वोट देने के अधिकार को छीना जा रहा है और जहाँ-जहाँ यह प्रक्रिया चालू होगी वहाँ इस अधिकार को छीन लिया जायेगा। इसका ताज़ा उदाहरण पश्चिम बंगाल में हुआ एसआईआर है।

पश्चिम बंगाल के एसआईआर में 91 लाख लोग मतदाता सूची से बाहर कर दिये गये। यह संख्या कुल मतदाता आबादी का 10% से अधिक है। इसमें से तक्ररीबन 27 लाख लोगों ने अपने नाम हटाये जाने का विरोध किया है और उसे ग़लत बताया है। मतदाता सूची से हटाये

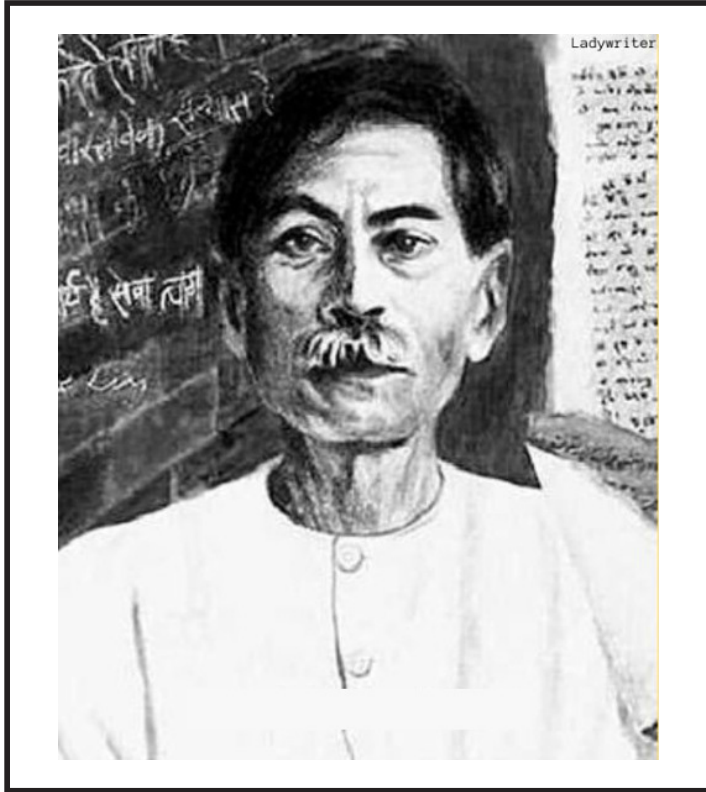
जाने वाले लोगों में एक बड़ी आबादी मुसलमानों, दलितों, प्रवासी मजदूरों, स्त्रियों की है या फिर उन लोगों की है जो सरकार की जनविरोधी नीतियों की आलोचना करते हैं। यह वे लोग हैं जिनसे भाजपा को वोट मिलने की उम्मीद नगण्य है इसलिए भाजपा सरकार "घुसपैठियों" और “बांग्लादेशियों” का डर दिखा कर असल में समूची जनता को ही निशाना बना रही है। एसआईआर की प्रक्रिया के ज़रिये चुनाव की पूरी प्रणाली को ही बेअसर बना दिया जायेगा यानी जनता की सामूहिक इच्छा चाहे कुछ भी हो वह चुनाव में कभी अभिव्यक्त नहीं हो पायेगी और इस तरह भाजपा का शासन चलता रहेगा। यह हमारे बुनियादी लोकतांत्रिक अधिकार को छीनने की तैयारी है इसलिए ही मोदी सरकार इसे इतनी मुस्तैदी के साथ करवा रही है। एसआईआर को पूरा करने के दवाब में लोग अपनी जान तक गँवा रहे हैं मगर इस सरकार को इससे रती भर भी फ़र्क़ नहीं पड़ता है।

इसलिए आज हमें न सिर्फ़ एसआईआर की आड़ में सरकार द्वारा जो बेगारी करवायी जा रही है और गुलामों जैसा काम करवाया जा रहा है उसके खिलाफ़ बोलना होगा बल्कि इससे भी ज़रूरी एसआईआर की पूरी धान्धली को ही बेनक्राब करना होगा। अगर अब भी चुपचाप सहते रहे तो आने वाली पीढ़ियाँ हमारी इस चुप्पी का दंश झेलेंगी और इससे भी नारकीय परिस्थितियों में काम करने को मजबूर होंगी।

महान साहित्यकार प्रेमचन्द के जन्मदिवस (31 जुलाई) के अवसर पर उनका एक महत्वपूर्ण लेख

साम्प्रदायिकता और संस्कृति

साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलने में शायद लज्जा आती है, इसलिए वह उस गधे की भाँति, जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल में जानवरों पर रोब जमाता फिरता था, संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है। हिन्दू अपनी संस्कृति को क्रयामत तक सुरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अभी तक अपनी-अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं, यह भूल गये हैं कि अब न कहीं हिन्दू संस्कृति है, न मुस्लिम संस्कृति और न कोई अन्य संस्कृति। अब संसार में केवल एक संस्कृति है, और वह है आर्थिक संस्कृति मगर आज भी हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति का रोना रोये चले जाते हैं। हालाँकि संस्कृति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। आर्य संस्कृति है, ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है। हिन्दू मूर्तिपूजक हैं, तो क्या मुसलमान कब्र पूजक और स्थान पूजक नहीं है। ताजिये को शर्बत और शीरीनी कौन चढ़ाता है, मस्जिद को खुदा का घर कौन समझता है। अगर मुसलमानों में एक सम्प्रदाय ऐसा है, जो बड़े से बड़े पैगम्बरों के सामने सिर झुकाना भी कुफ़्र समझता है, तो हिन्दुओं में भी एक ऐसा है जो देवताओं को पत्थर के टुकड़े और नदियों को पानी की धारा और धर्मग्रन्थों को गपोड़े समझता है। यहाँ तो हमें दोनों संस्कृतियों में कोई अन्तर नहीं दिखता। तो क्या भाषा का अन्तर है? बिल्कुल नहीं। मुसलमान उर्दू को अपनी मिल्ली भाषा कह लें, मगर मद्रासी मुसलमान के लिए उर्दू वैसी ही अपरिचित वस्तु है जैसे मद्रासी हिन्दू के लिए संस्कृत। हिन्दू या मुसलमान जिस प्रान्त में रहते हैं सर्वसाधारण की भाषा बोलते हैं चाहे वह उर्दू हो या हिन्दी, बांग्ला हो या मराठी। बंगाली मुसलमान उसी तरह उर्दू नहीं बोल सकता और न समझ सकता है, जिस तरह बंगाली हिन्दू दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। सीमाप्रान्त का हिन्दू उसी तरह पशतो बोलता है, जैसे वहाँ का मुसलमान। फिर क्या पहनावे में अन्तर है? सीमाप्रान्त के हिन्दू और मुसलमान स्त्रियों की तरह कुरता और ओढ़नी पहनते-ओढ़ते हैं। हिन्दू पुरुष भी मुसलमानों की तरह कुलाह और पगड़ी बाँधता है। अक्सर दोनों ही दाढ़ी भी रखते हैं। बंगाल में जाइये, वहाँ हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ दोनों ही साड़ी पहनती हैं, हिन्दू और मुसलमान पुरुष दोनों कुरता और धोती पहनते हैं तहमद की प्रथा बहुत हाल में चली है, जब से साम्प्रदायिकता ने जोर पकड़ा है। खान-पान को लीजिए। अगर मुसलमान मांस खाते हैं तो हिन्दू भी



अस्सी फीसदी मांस खाते हैं। ऊँचे दरजे के हिन्दू भी शराब पीते हैं, ऊँचे दरजे के मुसलमान भी। नीचे दरजे के हिन्दू भी शराब पीते हैं नीचे दरजे के मुसलमान भी। मध्यवर्ग के हिन्दू या तो बहुत कम शराब पीते हैं, या भंग के गोले चढ़ाते हैं जिसका नेता हमारा पण्डा-पुजारी क्लास है। मध्यवर्ग के मुसलमान भी बहुत कम शराब पीते हैं, हाँ कुछ लोग अफीम की पीनक अवश्य लेते हैं, मगर इस पीनकबाजी में हिन्दू भाई मुसलमानों से पीछे नहीं है। हाँ, मुसलमान गाय की कुर्बानी करते हैं। और उनका मांस खाते हैं लेकिन हिन्दुओं में भी ऐसी जातियाँ मौजूद हैं, जो गाय का मांस खाती हैं यहाँ तक कि मृतक मांस भी नहीं छोड़तीं, हालाँकि अधिक और मृतक मांस में विशेष अन्तर नहीं है। संसार में हिन्दू ही एक जाति है, जो गो-मांस को अखाद्य या अपवित्र समझती है। तो क्या इसलिए हिन्दुओं को समस्त विश्व से धर्म-संग्राम छेड़ देना चाहिए?

संगीत और चित्रकला भी संस्कृति का एक अंग है, लेकिन यहाँ भी हम कोई सांस्कृतिक भेद नहीं पाते। वही राग-रागनियाँ दोनों गाते हैं और मुगलकाल की चित्रकला से भी हम परिचित हैं। नाट्य कला पहले मुसलमानों में न रही हो, लेकिन आज इस सींग में भी हम मुसलमान को उसी तरह पाते हैं जैसे हिन्दुओं को।

फिर हमारी समझ में नहीं आता कि वह कौन सी संस्कृति है, जिसकी रक्षा के लिए साम्प्रदायिकता इतना जोर बाँध रही है। वास्तव में संस्कृति की पुकार केवल ढोंग है, निरा पाखण्ड। शीतल छाया में बैठे विहार करते हैं। यह सीधे-सादे आदमियों को साम्प्रदायिकता की ओर घसीट लाने का केवल एक मन्त्र है और कुछ नहीं। हिन्दू और मुस्लिम

संस्कृति के रक्षक वही महानुभाव और वही समुदाय हैं, जिनको अपने ऊपर, अपने देशवासियों के ऊपर और सत्य के ऊपर कोई भरोसा नहीं, इसलिए अनन्त तक एक ऐसी शक्ति की जरूरत समझते हैं जो उनके झगड़ों में सरपंच का काम करती रहे।

इन संस्थाओं को जनता को सुख-दुख से कोई मतलब नहीं, उनके पास ऐसा कोई सामाजिक या राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है जिसे राष्ट्र के सामने रख सकें। उनका काम केवल एक-दूसरे का विरोध करके सरकार के सामने फ़रियाद करना है। वे ओहदों और रियायतों के लिए एक-दूसरे से चढ़ा-ऊपरी करके जनता पर शासन करने में शासक के सहायक बनने के सिवा और कुछ नहीं करते।

मुसलमान अगर शासकों का दामन पकड़कर कुछ रियायतें पा गया है तो हिन्दू क्यों न सरकार का दामन पकड़ें

और क्यों न मुसलमानों की भाँति सुखरू बन जायें। यही उनकी मनोवृत्ति है। कोई ऐसा काम सोच निकालना जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों एक राष्ट्र का उद्धार कर सकें, उनकी विचार शक्ति से बाहर है। दोनों ही साम्प्रदायिक संस्थाएँ मध्यवर्ग के धनिकों, ज़मींदारों, ओहदेदारों और पदलोलुपों की हैं। उनका कार्यक्षेत्र अपने समुदाय के लिए ऐसे अवसर प्राप्त करना है, जिससे वह जनता पर शासन कर सकें, जनता पर आर्थिक और व्यावसायिक प्रभुत्व जमा सकें। साधारण जनता के सुख-दुख से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। अगर सरकार की किसी नीति से जनता को कुछ लाभ होने की आशा है और इन समुदायों को कुछ क्षति पहुँचने का भय है, तो वे तुरन्त उसका विरोध करने को तैयार हो जायेंगे। अगर और ज़्यादा गहराई तक जायें तो हमें इन संस्थाओं में अधिकांश ऐसे सज्जन मिलेंगे जिनका कोई न कोई निजी हित लगा हुआ है। और कुछ न सही तो हुक्काम के बंगलों पर उनकी रसोई ही सरल हो जाती है। एक विचित्र बात है कि इन सज्जनों की अफ़सरों की निगाह में बड़ी इज्जत है, इनकी वे बड़ी खातिर करते हैं।

इसका कारण इसके सिवा और क्या है कि वे समझते हैं, ऐसों पर ही उनका प्रभुत्व टिका हुआ है। आपस में खूब लड़े जाओ, खूब एक-दूसरे को नुकसान पहुँचाये जाओ। उनके पास फ़रियाद लिये जाओ, फिर उन्हें किसका नाम है, वे अमर हैं। मजा यह है कि बाजों ने यह पाखण्ड फैलाना भी शुरू कर दिया है कि हिन्दू अपने बूते पर स्वराज प्राप्त कर सकते हैं। इतिहास से उसके उदाहरण भी दिये जाते हैं। इस तरह की ग़लतमहमियाँ फैला कर इसके सिवा कि मुसलमानों में और ज़्यादा बदगुमानी फैले और कोई

नतीजा नहीं निकल सकता। अगर कोई ज़माना था, तो कोई ऐसा काल भी था, जब हिन्दूओं के ज़माने में मुसलमानों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया था, उन ज़मानों को भूल जाइये। वह मुबारक दिन होगा, जब हमारे शालाओं में इतिहास उठा दिया जायेगा। यह ज़माना साम्प्रदायिक अभ्युदय का नहीं है। यह आर्थिक युग है और आज वही नीति सफल होगी जिससे जनता अपनी आर्थिक समस्याओं को हल कर सके जिससे यह अन्धविश्वास, यह धर्म के नाम पर किया गया पाखण्ड, यह नीति के नाम पर ग़रीबों को दुहने की कृपा मिटाई जा सके। जनता को आज संस्कृतियों की रक्षा करने का न अवकाश है न ज़रूरत। 'संस्कृति' अमीरों, पेटभरों का बेफ़िक्रों का व्यसन है। दरिद्रों के लिए प्राण रक्षा ही सबसे बड़ी समस्या है।

उस संस्कृति में था ही क्या, जिसकी वे रक्षा करें। जब जनता मूर्छित थी तब उस पर धर्म और संस्कृति का मोह छाया हुआ था। ज्यों-ज्यों उसकी चेतना जागृत होती जाती है वह देखने लगी है कि यह संस्कृति केवल लुटेरों की संस्कृति थी जो, राजा बनकर, विद्वान बनकर, जगत सेठ बनकर जनता को लूटती थी। उसे आज अपने जीवन की रक्षा की ज़्यादा चिन्ता है, जो संस्कृति की रक्षा से कहीं आवश्यक है। उस पुरान संस्कृति में उसके लिए मोह का कोई कारण नहीं है। और साम्प्रदायिकता उसकी आर्थिक समस्याओं की तरफ से आँखें बन्द किये हुए ऐसे कार्यक्रम पर चल रही है, जिससे उसकी पराधीनता चिरस्थायी बनी रहेगी।

- प्रेमचन्द
(जनवरी 1934)



कलाकार - चित्तोप्रसाद

देश भर में काम के दौरान हो रही सीवर सफ़ाईकर्मियों की मौतें असल में व्यवस्था जनित हत्याएँ हैं! मोदी सरकार को ‘स्वच्छ भारत अभियान’ का पाखण्ड बन्द करके सफ़ाईकर्मियों के लिए सुरक्षा के पुख्ता इन्तज़ाम करने चाहिए!

● इन्द्रजीत

हमारे ‘नॉन-बायलोजिकल’ और अलौकिक प्रधानमन्त्री मोदी ने 17 जुलाई को हरियाणा के जीन्द में ‘नमो ग्रीन’ नाम की देश की पहली हाइड्रोजन रेल का फ़ीता काटा है। जुलाई 18 को इसरो के द्वारा देश की एक प्राइवेट कम्पनी द्वारा बनाये गये पहले ऑरबिटल रॉकेट को लॉन्च किया गया। भारत द्वारा अन्तरिक्ष मिशन और चन्द्रयान मिशन पहले ही भेजे जा चुके हैं। इसी जुलाई माह की 8 तारीख़ को जारी सफ़ाई कर्मचारी आन्दोलन की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2026 के पहले 188 दिनों में यानी 7 जुलाई तक ही देशभर में 101 सीवर सफ़ाई कर्मचारियों की मौतें दर्ज की गयीं। यह भारत की दो तस्वीरों का जीता-जागता नमूना है। एक तरफ़ देश की तरक्की के दमगजे भरे जा रहे हैं और भर-भरकर श्रेय लूटा जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ़ समाज में सफ़ाई जैसा सबसे बुनियादी काम करने वाले मेहनतकश लोगों के जीवन को यह व्यवस्था निगल रही है और इसकी ज़िम्मेदारी लेने के लिए कोई भी तैयार नहीं है!

आप एक स्थिति की कल्पना कीजिये कि कोई अच्छा-भला व्यक्ति सफ़ाई के लिए सीवर या सेप्टिक टैंक या मैनहोल में उतरता है लेकिन कुछ क्षणों के बाद ही उसकी लाश ऊपर लायी जाती है! उसकी मौत सीवर में मौजूद ज़हरीली गैस से हो चुकी होती है क्योंकि व्यक्ति के पास अपनी जान बचाने के लिए पूरे शरीर को ढकने वाला सूट, ऑक्सीजन सिलेण्डर जैसे कोई साधन नहीं होता। बचाव के साधन इसलिए नहीं होते क्योंकि सरकारों, वोट के व्यापारियों और व्यवस्था के पहरेदारों के लिए सफ़ाई कर्मचारी जैसे व्यक्ति की जान की कोई क़ीमत नहीं होती! दो जून की रोटी की ख़ातिर ही कोई व्यक्ति सफ़ाई के काम को पेशे के तौर पर अपनाता है। जोखिम और ख़तरा होने के बावजूद लगा रहता है। बदले में पाता है थोड़ी सी मज़दूरी, ढेर सारी गन्दगी, चर्मरोग, अन्य खतरनाक बीमारियाँ और असमय मौत भी। सफ़ाईकर्मि हमारे बीच से ही होते हैं और बेहद समाजोपयोगी काम में अपना जीवन खर्च कर देते हैं। क्या इनकी मौतों का सिलसिला ऐसे ही चलता रहेगा?

क्या एक जीवित समाज के लिए यह स्थिति स्वीकार्य हो सकती है?

2026 के पहले 188 दिनों में ही देश में 101 सफ़ाई कर्मचारियों की मौत सीवर सफ़ाई के दौरान हो जाती है यानी हर 45 घण्टे में एक मौत! और यह संख्या कम नहीं हो रही बल्कि हर वर्ष बढ़ रही है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 2014 से लेकर 2025 तक 903 सफ़ाई कर्मचारियों की मौतें दर्ज हुईं लेकिन सफ़ाई कर्मचारी आन्दोलन के अनुसार 2013 से 2026 के अब तक सीवर और सेप्टिक टैंक को साफ़ करते हुए 1,726 लोग अपनी जान गँवा चुके हैं। वैसे तो 2013 में क़ानून बनाकर हाथ से मैला ढोने को निषिद्ध कर दिया गया था। लेकिन क्या हाथ से मैला ढोने और मैले से भरे नाले या कुण्ड में डुबकी लगाने में कोई गुणात्मक फ़र्क़ किया जायेगा? कहना नहीं होगा कि इस क़ानून में पर्याप्त अस्पष्टताएँ हैं। नंगे हाथों और नंगे बदन सीवर सफ़ाई का काम करने को हाथ से मैला ढोने के काम से अलग तरह से क्यों देखा जाता है? सफ़ाई कर्मचारियों को बिना सुरक्षा उपकरणों के काम करने को मजबूर करने वाले अधिकारियों, ठेकेदारों, अफसरों और नेताओं का कभी कुछ क्यों नहीं बिगड़ता है? कारण स्पष्ट है स्वच्छता कर्मचारियों की कुल संख्या में से तक्ररीबन 92 प्रतिशत लोग दलित, आदिवासी व पिछड़ी जातियों से आते हैं। यह आबादी भयंकर ग़रीबी, असहायता और लाचारी भरा जीवन जीती है। इसीलिए सत्ताधारियों के लिए इनकी जान की कोई क़ीमत नहीं होती है। वोट लेने के लिए सफ़ाईकर्मियों के पैर धोने की नौटंकी और इनके घरों में खाना खाने का ढोंग नेता-मन्त्री भले कितना ही कर लें मगर असल सच्चाई किसी से छिप नहीं सकती है।

मोदी सरकार ने 2014 में ‘स्वच्छ भारत अभियान’ के ढकोसले को भी शुरू किया लेकिन इसका सम्बन्ध न तो सफ़ाई और स्वच्छता से है और न ही सफ़ाई कर्मचारियों के जीवन में किसी वास्तविक बदलाव से। इसका महत्व डण्डे वाली झाड़ू थामकर नेताओं द्वारा फ़ोटो सेशन कराने से अधिक नहीं है! ‘स्वच्छ भारत अभियान’ के पैसे में होने वाले घपलों और अनियमितताओं की ख़बरें आये दिन हमारे सामने आती ही रहती हैं। निगमनात्मक पद्धति से ही देखें तो ‘स्वच्छ भारत अभियान’ के इतने भौकाल के बाद भी हमारा देश वैश्विक पर्यावरण प्रदूषण सूचकांक में 177 देशों की सूची में 176वें स्थान पर है। अमीरज़ादों के कुछ इलाक़ों को छोड़ दिया जाये तो गली-गली, गाँव-शहर ग़णशुष्क के ढेर बने रहते हैं। वैसे पूरे देश में ही मेहनतकश लोगों का जीना दूभर है ।



लेकिन इनमें भी सफ़ाई कर्मचारियों पर मौत की तलवार सबसे ज़्यादा लटकती रहती है। कोई दिन ही बीतता होगा जब सफ़ाई कर्मचारियों के साथ जानलेवा हादसे नहीं होते होंगे! सफ़ाई के काम में लगे कितने ही मज़दूरों की मौत सीवर, सेप्टिक टैंक, नाले आदि की सफ़ाई के दौरान हो जाती है। मौत का सबसे बड़ा कारण मज़दूरों के पास सुरक्षा के पुख्ता इन्तज़ाम नहीं होना है। मोदी सरकार

एक ओर ‘स्वच्छ भारत अभियान’ की नौटंकी कर रही है पर दूसरी ओर देश भर के हज़ारों सफ़ाई कर्मचारी मौत के मुँह में जाकर सफ़ाई का काम करने को मजबूर हैं। असल में, सफ़ाई के दौरान होने वाली ये स्वाभाविक मौतें नहीं हैं बल्कि व्यवस्था द्वारा की जा रही ठण्डी हत्याएँ हैं! इन हत्याओं में ठेकेदार कम्पनियों, बड़े अधिकारियों और केन्द्र व राज्य सरकारों की सीधी भूमिका बनती है।

आज से 12 साल पहले दिये गये सुप्रीम कोर्ट के एक आदेश के अनुसार प्रत्येक सफ़ाईकर्मि को कम से कम 20,000 रुपये न्यूनतम वेतन मिलना चाहिए और सरकार द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सफ़ाई का पेशा कुछ विशिष्ट दलित जतियों के ही हिस्से न आने पाये! मुद्रास्फीति और महँगाई के हिसाब से आज 20 हज़ार तो बेहद नाक़ाफ़ी हैं और यह राशि कम से कम 30 हज़ार होनी चाहिए। किन्तु क्या सिर्फ़ आदेश देने से ही काम चल जाता है? इन आदेशों को लागू कराने की ज़वाबदेही लेने का ज़िम्मा भी तो किसीका होना ही चाहिए। सरकार तो ऐसे आदेशों की पतली डण्डी बनाकर कान का मैल साफ़ करने के बाद इन्हें कूड़े के ढेर में फेंक देती है! देश में लाखों सफ़ाई कर्मचारी कच्चे कर्मचारी के तौर पर अथवा ठेकेदार कम्पनियों के गुलामों के तौर पर खट रहे हैं जिन्हें महज़ 10-12 हज़ार रुपये माहवार वेतन में अपनी जान जोखिम में डालनी पड़ती है! मरने वाले चूँकि समाज के सबसे निचले पायदान पर होते हैं इसलिए सत्ता में बैठे लोगों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती! लोग मरते रहते हैं और सरकारी नौटंकियाँ चलती रहती हैं। क्या सफ़ाई कर्मचारी की जान की कोई क़ीमत नहीं है? क्या सफ़ाई कर्मचारी के काम की अहमियत किसी

से भी कम है? क्यों सफ़ाईकर्मियों को पर्याप्त सुरक्षा के साधन उपलब्ध नहीं होते? क्या सरकारों को चला रहे स्वघोषित तारणहार अपने सगे सम्बन्धियों या खुद इन हालात में काम करना पसन्द करेंगे?

‘स्वच्छ भारत अभियान’ की नौटंकी का श्रेय लेने के लिए तो तमाम सफेदपोश खद्दरधारी हाथों में झाड़ू उठाकर ढोंग करते हुए फोटो खिंचवा लेंगे किन्तु सफ़ाईकर्मियों के हालात की किसी को कोई फ़िक्र नहीं है। ख़ुद को दलितों के मसीहा कहने वाले और दलितों के नाम पर वोटों की भीख माँगने वालों के भरोसे बैठे रहकर भी कुछ नहीं होने वाला है। असल में ये सत्ता की चौखट से बन्धे हुए पालतू जीव से ज़्यादा कुछ नहीं हैं। इन्हें जुबानी जमा-खर्च से ज़्यादा कुछ नहीं करना होता क्योंकि इनके खुद के घरों में चमक-दमक क़ायम रहती है तथा इनके ख़ुद के बच्चों का भविष्य पूरी तरह से सुरक्षित रहता है। हमारा भला अपनी एकजुटता और संघर्ष के बूते ही हो सकता है। सफ़ाईकर्मियों को अपनी एकजुटता क़ायम करनी चाहिए और अपनी जुझारू यूनियन खड़ी करनी चाहिए! देश की व्यापक जनता को भी सफ़ाई कर्मियों की सुनियोजित हत्याओं पर सरकारों को घेरना चाहिए और इनके अधिकारों के लिए सरकारों पर दबाव बनाना चाहिए। सफ़ाई कर्मचारियों की मौतों के लिए ज़िम्मेदार ठेकेदारों और अधिकारियों पर सख़्त कार्रवाई होनी चाहिए। सफ़ाईकर्मियों के लिए कार्यस्थल पर पुख्ता सुरक्षा उपकरण, पूरे शरीर को ढँकने वाला सूट, ऑक्सीजन सिलेण्डर और उचित वर्दी का समुचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए। सभी सफ़ाई कर्मचारियों को पक्का किया जाना चाहिए और ‘स्वच्छ भारत अभियान’ के बजट में पर्याप्त बढ़ोत्तरी करके इसका एक हिस्सा सफ़ाई कर्मचारियों के हालात को सुधारने के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए। सफ़ाई के पूरे काम का मशीनीकरण किया जाना चाहिए।

ग्रेट निकोबार परियोजना : विकास के नाम पर प्राकृतिक सम्पदा के दोहन के लिए पूँजीपतियों को खुली छूट

(पेज 11 से आगे)

अन्तरराष्ट्रीय वाणिज्यिक ट्रांसशिपमेण्ट हब, हवाई अड्डे और टाउनशिप आदि के निर्माण से सबसे ज़्यादा मुनाफ़ा ‘रियल इस्टेट सेक्टर’ और वाणिज्यिक सेक्टर से जुड़े पूँजीपतियों को होगा। ग्रेट निकोबार द्वीप पर प्रस्तावित अन्तरराष्ट्रीय कण्टेनर ट्रांसशिपमेण्ट टर्मिनल तथा उससे सम्बन्धित अवसंरचना के विकास के लिए 11 बड़ी कम्पनियों ने इ.ओ.आई .(Expression of Interest) प्रस्तुत किया है जिसमें लार्सन एण्ड टुब्रो

लिमिटेड, जेएसडब्ल्यू इन्फ़्रास्ट्रक्चर लिमिटेड, एफ़कॉन्स इन्फ़्रास्ट्रक्चर लिमिटेड और अडानी समूह भी शामिल हैं। अगर निकट भविष्य में इस अन्तरराष्ट्रीय वाणिज्यिक ट्रांसशिपमेण्ट हब के संचालन का अधिकार अडानी जैसे किसी बड़े पूँजीपति के हाथों में आ जाये तो इसमें अचरज भी नहीं होगा!

और अन्त में.....

ग्रेट निकोबार परियोजना और इसके दुष्परिणामों के बारे में देश की अधिकांश जनता को जानकारी नहीं के बराबर है।

अगर गोदी मीडिया में यह मुद्दा कभी उछाला भी जाता है, तो अन्धराष्ट्रवाद का शोर मचाकर इसे दबा दिया जाता है। ग्रेट निकोबार परियोजना का विरोध करने वाले को सरकार की गोद में बैठी गोदी मीडिया द्वारा देशद्रोही कहा जाता है या चीन का एजेण्ट बताया जाता है। लेकिन हम इस पर चुप्पी साधे बैठे नहीं रह सकते हैं। आज हमें ग्रेट निकोबार परियोजना के मसले पर भी मोदी सरकार से सवाल करना होगा और कुदरत की इस खुली लूट का विरोध करना होगा।

हमें ग्रेट निकोबार द्वीप के निवासियों के हक़ों के साथ भी खड़ा होना होगा जो अपने ही द्वीप से विस्थापित होने की कगार पर खड़े हैं। विपक्ष के नेता राहुल गांधी ने भले इस मसले को एक मुद्दा बनाकर उठाया है लेकिन हम यह भी जानते हैं कि कांग्रेस जैसी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टी की एक सीमा है। वह अपना विरोध कभी भी इस पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे से बाहर नहीं ले जायेगी। इसके अतिरिक्त कांग्रेस का अपना ट्रैक रिकॉर्ड भी इस मामले में

अकथनीय है। सत्ता में रहते हुए ख़ुद कांग्रेस की सरकारों ने इसी तरह की पर्यावरण-विरोधी नवउदारवादी नीतियों को ही बढ़ावा दिया था जिसे आज मोदी सरकार और भी भयंकर तरीक़े से लागू करने पर आमादा है। आज पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र बचाने की लड़ाई को किसी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टी के भरोसे छोड़ने की बजाय जनता की व्यापक जन एकजुटता स्थापित करते हुए इस मोर्चे पर भी जुझारू जनलामबन्दी निर्मित करनी होगी।

आर्टिफ़िशियल इण्टेलिजेंस (एआई) के इस्तेमाल से मज़दूरों पर लटक रही है बड़े पैमाने पर छँटनी की तलवार लेकिन दुश्मन एआई नहीं बल्कि पूँजीवाद है!

● आनन्द

पिछले कुछ वर्षों से आर्टिफ़िशियल इण्टेलिजेंस (कृत्रिम बुदधिमत्ता, एआई) नामक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल दुनियाभर में बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है। दुनिया की दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ मुनाफ़े की होड़ में आगे निकलने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर एआई में निवेश कर रही हैं जिसकी वजह से विश्व अर्थव्यवस्था में एआई का बुलबुला लगातार फूलता जा रहा है। कुछ बुर्जुआ विशेषज्ञ एआई को अगली औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा दे रहे हैं और एआई के कुछ अतिउत्साहित समर्थक तो यहाँ तक कह रहे हैं कि एआई भविष्य में मानवीय बुद्धिमत्ता को मात दे देगा! इसके साथ ही अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में एआई के बढ़ते प्रयोग से होने वाली सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और पर्यावरणीय समस्याओं पर भी तीखी बहसें हो रही हैं। मानसिक श्रम से जुड़े बहुत से यांत्रिक क्रिस्म के काम जो बार-बार दोहराये जाते हैं और जिनमें ज्यादा रचनात्मकता की ज़रूरत नहीं होती, उन्हें अब एआई आसानी से कर सकता है और उनके लिए अब इंसानों की ज़रूरत नहीं है। यही वजह है कि एआई के इस्तेमाल से आईटी सहित अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर छँटनी की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। आने वाले दिनों में यह प्रक्रिया और तेज़ ही होने वाली है। ऐसे में मज़दूर वर्ग के लिए यह महज़ दार्शनिक या नैतिक प्रश्न नहीं है बल्कि हमारी आजीविका से जुड़ा एक ज़िन्दा सवाल है। इसलिए हमें इस तेज़ी से विकसित हो रही परिघटना की समझदारी विकसित करनी होगी।

यह एआई है क्या बला?

आर्टिफ़िशियल इण्टेलिजेंस (एआई) को अक्सर बहुत रहस्यमयी चीज़ बनाकर पेश किया जाता है जिसकी वजह से उसके बारे में तमाम क्रिस्म की भ्रान्तियाँ पैदा हुई हैं। एक तरफ़ कुछ लोग उसका अतिरेकी गौरवगान करते हैं और उसे मनुष्य की चेतना के सम्भावित विकल्प के रूप में पेश करने लगते हैं, तो दूसरी तरफ़ कुछ लोग उसके महत्व को कम करके आँकते हैं और उसे गूगल सर्च या विकीपीडिया जैसा ही एक सॉफ़्टवेयर प्रोग्राम समझने की भूल करते हैं। एआई के वास्तविक महत्व को समझने के लिए उसको मनुष्य द्वारा सामाजिक उत्पादन की ऐतिहासिक प्रक्रिया में विकसित किये गये औज़ारों और प्रौद्योगिकियों की निरन्तरता में ही देखा जाना चाहिए। इसी ऐतिहासिक प्रक्रिया के दौरान मनुष्य ने पत्थर के औज़ारों से लेकर आधुनिक मशीनों व कम्प्यूटर तक का आविष्कार किया और एआई इसका अगला और नवीनतम चरण है। फ़र्क़ बस इतना है कि जहाँ मशीनों ने मनुष्य के शारीरिक श्रम का स्वचालन (automation) किया था वहीं एआई ने एक हद तक हमारे

मानसिक श्रम का स्वचालन मुमकिन बनाया है। यानी जिस तरह से मशीनें हमारे हाथों का विस्तार हैं, उसी तरह से एआई हमारे दिमाग़ का विस्तार है। मनुष्यता की विकास यात्रा में कम्प्यूटिंग, गणित, सांख्यिकी, तंत्रिका विज्ञान और सूचना सिद्धान्त के विकास की बदौलत ही एआई की खोज मुमकिन हो सकी है। जिस तरह से मशीनों के अस्तित्व में आने के बाद मनुष्य की शारीरिक श्रम करने की उत्पादकता कई गुना बढ़ी, उसी तरह से एआई की बदौलत मनुष्य के मानसिक श्रम की उत्पादकता में ज़बर्दस्त इज़ाफ़ा होने की सम्भावना पैदा हुई है। वैसे देखा जाये तो चैटजीपीटी, जेमिनाई और डीपसीक जैसे एआई सिस्टम में भी सॉफ़्टवेयर प्रोग्राम का इस्तेमाल होता है, परन्तु वह पारम्परिक सॉफ़्टवेयर प्रोग्राम से इस मायने में बुनियादी रूप से भिन्न है कि वह महज़ उसके कोड में दिये गये नियमों व डेटाबेस में संग्रहित डेटा पर निर्भर नहीं रहता बल्कि विशाल मात्रा में डेटा के प्रशिक्षण से सीखे गये पैटर्न के आधार पर अनुमान लगाता है और भविष्यवाणी करता है।

एआई की इस अद्भुत क्षमता से चकित होकर बहुत से लोग यह दावा करने लगते हैं कि एक दिन एआई मनुष्य की बुद्धिमत्ता को भी मात दे देगा। परन्तु ऐसा दावा करने वाले लोगों को न तो एआई की सही समझ होती है और न ही मनुष्य के दिमाग़, उसकी चेतना और उसकी बुद्धिमत्ता की। एआई दिमाग़ का विस्तार हो सकता है लेकिन वह हमारे दिमाग़ का विकल्प कभी भी नहीं हो सकता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि एआई हमारे दिमाग़ का अच्छा सहयोगी व मददगार हो सकता है क्योंकि वह हमारे दिमाग़ द्वारा की जाने वाली तमाम गतिविधियों में से कुछ को ज्यादा तेज़ी से कर सकता है और कुछ मायनो में ज्यादा बेहतर ढंग से कर सकता है। मिसाल के लिए, गणना करना और कुछ गणितीय सवालों को हल करना, कम्प्यूटर के लिए कोड तैयार करना, कोड का परीक्षण करना, डेटा का आरम्भिक विश्लेषण करना, किसी दस्तावेज़ की समरी तैयार करना, रिपोर्ट तैयार करना, किसी विषय पर आलेख या ईमेल लिखना, अनुवाद करना, किसी अवधारणा को समझने में मदद करना आदि। परन्तु मनुष्य की बुद्धिमत्ता केवल उपरोक्त पहलुओं तक सीमित नहीं होती। हमारे ज्ञान व हमारी बुद्धिमत्ता का विकास सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में प्रकृति के साथ व समाज में अन्य मनुष्यों के साथ अन्तःक्रिया के ज़रिये होता है। इन अन्तःक्रियाओं के दौरान हमारी इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये गये आनुभविक ज्ञान के अमूर्तिकरण व सामान्यीकरण से हमारे दिमाग़ में प्रकृति व समाज के बारे में अवधारणाएँ बनती है और समझदारी विकसित होती है। जबकि एआई की क्षमता विशाल मात्रा में डेटा के पैटर्न और मनुष्यों द्वारा दिये

गये प्रशिक्षण पर निर्भर करती है। एआई के विभिन्न मॉडलों को अरबों-खरबों की मात्रा में डिजिटल सामग्री के ज़रिये प्रशिक्षित किया गया है। इस प्रशिक्षण व डेटा के पैटर्न के आधार पर वह एक हद तक अमूर्तिकरण व सामान्यीकरण कर सकता है और कुछ निष्कर्षों तक पहुँचता है, परन्तु उसकी इस अत्यन्त सीमित क्षमता की तुलना मनुष्य के दिमाग़ की अमूर्तन व सामान्यीकरण व सैद्धान्तिकरण की क्षमता से नहीं की जा सकती है। किसी ऐसी परिघटना या परिस्थिति, जिसके बारे में एआई को पर्याप्त डेटा से प्रशिक्षित नहीं किया गया है, उसके बारे में सवाल पूछने पर एआई हाथ खड़े कर देता है। जबकि मनुष्य के पास नयी से नयी परिघटना या विकसित हो रही परिघटना को भी समझने की क्षमता होती है क्योंकि वह अपनी इन्द्रियों के ज़रिये प्रकृति व समाज का प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन करता है।

वास्तव में एआई मनुष्यता के सामूहिक ज्ञान के एक अंश का एक गणितीय प्रतिबिम्बन है। मार्क्स के शब्दों में यह समाज की सामान्य मेधा (general intellect) का ही एक उन्नत रूप है जो अपने आप में उत्पादक शक्ति है। परन्तु तमाम उत्पादक शक्तियों की ही भाँति इस उत्पादक शक्ति का निर्माता मनुष्य ही है। यह सच है कि गणितीय डेटा के पैटर्न व प्रशिक्षण के आधार पर एआई मशीन लर्निंग व डीप लर्निंग के ज़रिये सवालों का जवाब देने की अपनी क्षमता को लगातार विकसित करता रहता है। परन्तु उसमें ऐतिहासिक रूप से श्रम की प्रक्रिया में पैदा हुई मनुष्य की चेतना, अनुभव और आत्मचिन्तन का अभाव है। एआई को इस भौतिक जगत की कोई अनुभूति नहीं होती, वह आत्म-जागरूक नहीं होता और उसकी स्वयं की इच्छाएँ, भावनाएँ व उद्देश्य नहीं होते। इसलिए एआई द्वारा मनुष्य की चेतना व बुद्धिमत्ता को प्रतिस्थापित कर देने वाली बातें बस विज्ञान गल्प या फ़िल्मी फ़न्तासियाँ हैं, वास्तविकता में इसकी कोई सम्भावना दूर-दूर तक नहीं है।

एआई का प्रभाव

औद्योगिक क्रान्ति के बाद मशीनों के अस्तित्व में आने के बाद से बहुत बड़े पैमाने पर कारीगरों व शिल्पकारों की कारीगरी व शिल्प किसी काम के नहीं रहे और वे मज़दूरों में तब्दील हो गये। आज के दौर में एआई के आने के बाद मानसिक श्रम करने वाले बौद्धिक मज़दूरों के सामने भी वैसा ही खतरा मँडरा रहा है। कम्प्यूटर की खोज के बाद बौद्धिक श्रम करने वाले इंजीनियरों द्वारा बहुत से ऐसे सॉफ़्टवेयर व हार्डवेयर बनाये गये जिनकी वजह से शारीरिक श्रम करने वाले तमाम मज़दूर उत्पादन की दुनिया से बाहर हो गये और बेरोज़गारों की फ़ौज में शामिल हो गये थे। अब एआई के इस्तेमाल से ऐसे

तमाम बौद्धिक श्रमिकों के भी अप्रासंगिक हो जाने और बेरोज़गारों की फ़ौज में शामिल होने की ज़मीन तैयार हो रही है। पिछले कुछ दशकों में अर्थव्यवस्था के सेवा क्षेत्र में रोज़गार के नये अवसर पैदा हुए थे, मिसाल के लिए सॉफ़्टवेयर प्रोग्रामर, टेस्टर, ग्राहक सेवा, डेटा एण्ट्री, कण्टेण्ट राइटर, अनुवादक, ऑनलाइन टीचर वित्तीय विश्लेषक आदि। अब एआई इस प्रकार के कामों को काफ़ी हद तक कर सकता है जिसकी वजह से सेवा क्षेत्र में रोज़गार पर गाज गिरने वाली है। वास्तव में यह प्रक्रिया पहले ही शुरू हो चुकी है। एआई की वजह से होने वाली छँटनी का अध्ययन करने वाले एक पोर्टल layoffs.ai के मुताबिक़ वर्ष 2026 में अब तक दुनियाभर में एआई के वजह से 1 लाख 20 हजार से ज्यादा लोगों को नौकरी से निकाला जा चुका है। मेटा, एमेज़ॉन, सिस्को, माइक्रोसॉफ़्ट और ऑरैकल सहित दुनिया की तमाम बड़ी टेक कम्पनियाँ बड़े पैमाने पर छँटनी कर रही हैं। भारत भी इस छँटनी के खतरे से अछूता नहीं है। स्टार्लिंग एजेंसी टीमलीज़ के मुताबिक़ एआई की वजह से इस साल अकेले भारत के आईटी क्षेत्र में ही 35 हजार नौकरियों के समाप्त होने की सम्भावना है। भारत के आईटी क्षेत्र में एआई की वजह से इस साल अब तक 15 हजार लोग अपनी नौकरियाँ गँवा चुके हैं। हालाँकि एआई की वजह से नये प्रकार की नौकरियों की सम्भावना भी पैदा हुई है जैसे एआई ट्रेनर, डेटा एनोटेटर, एआई सुरक्षा विशेषज्ञ, डेटा वैज्ञानिक आदि, परन्तु ये नयी सम्भावनाएँ बिल्कुल अलग तरह के विशिष्ट हुनर की माँग करती हैं और इसमें पुराने हुनर किसी काम के नहीं रहेंगे। किसी नियोजित अर्थव्यवस्था में पुराने हुनर वाले लोगों का प्रशिक्षण करके उन्हें नये हुनर सिखाये जा सकते हैं ताकि वे बेरोज़गार न हों। परन्तु पूँजीवाद में ऐसा नहीं होता। इसलिए एआई के बढ़ते इस्तेमाल की वजह से दुनिया के विभिन्न हिस्सों की ही भाँति भारत में भी पहले से ही बढ़ रही बेरोज़गारी की समस्या और विकराल रूप धारण करेगी। साथ ही आर्थिक असमानता की खाई भी और तेज़ी से बढ़ेगी क्योंकि जहाँ एक ओर एआई श्रम की उत्पादकता बढ़ाकर और उत्पादन की लागत कम करके छोटी अवधि में चन्द इज़ारेदार पूँजीपतियों के मुनाफ़े को बढ़ाने में मदद करेगा और उच्च तकनीकी हुनर वाली छोटी-सी आबादी के लिए पैसा कमाने की नयी सम्भावनाएँ खोलेगा, वहीं दूसरी ओर बड़ी संख्या में लोगों की आजीविका पर खतरा बना रहेगा और उनकी आमदनी में गिरावट होगी। साथ ही एआई का लगातार बढ़ता प्रयोग लम्बी अवधि में समूची पूँजीवादी व्यवस्था के संकट को और बढ़ाने का ही काम करेगा क्योंकि श्रमशक्ति की बजाय एआई जैसी

प्रौद्योगिकी पर ज़्यादा से ज़्यादा निवेश होने की वजह से मुनाफ़े की औसत दर में गिरावट की प्रवृत्ति और तेज़ी से बढ़ेगी।

मज़दूर वर्ग का एआई के प्रति क्या नज़रिया होना चाहिए?

एआई के इस्तेमाल से होने वाली छँटनी और बेरोज़गारी की समस्या को देखते हुए बहुत से लोग एआई को ही तमाम समस्याओं की जड़ समझने लगते हैं और उसपर अंकुश लगाने की वकालत करते हैं। जिस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति के बाद मशीनों के उद्भव के बाद शुरूआती दौर में तमाम मज़दूर मशीनों को ही अपना दुश्मन समझने लगे थे या जिस तरह से कम्प्यूटर के आने के बाद लोगों के बेरोज़गार होने की वजह से बहुत से लोग उसका विरोध कर रहे थे, उसी तरह से आज बहुत से लोग एआई को समस्या की जड़ के रूप में पेश कर रहे हैं। परन्तु अगर हम गहराई से देखें तो यह पाएँगे कि समस्या एआई में नहीं बल्कि उस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में है जिसमें एआई का इस्तेमाल किया जा रहा है। दरअसल पूँजीपति वर्ग द्वारा एआई में निवेश और उसका बढ़ता इस्तेमाल मुनाफ़े की दर में गिरावट के संकट से उबरने के लिए किया जा रहा है। गौरतलब है कि पिछले कुछ दशकों के दौरान दुनियाभर में मैन्युफ़ैक्चरिंग में मुनाफ़े की दर के सन्तृप्तता बिन्दु पर पहुँचने के बाद सेवा क्षेत्र में निवेश बढ़ा है जहाँ विभिन्न क्रिस्म की सेवाओं को माल में तब्दील करके मुनाफ़े कमाने के नये-नये अवसर ढूँढे गये। परन्तु हाल के वर्षों में सेवा क्षेत्र में भी मुनाफ़े की दर के नीचे जाने की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से देखी गयी है। यही वह परिस्थिति है जिसमें बड़े पूँजीपति वर्ग का एक हिस्सा मानसिक श्रम के स्वचालन में ज़्यादा से ज़्यादा निवेश करके उत्पादकता बढ़ाकर मुनाफ़े की होड़ में आगे निकलने के लिए एआई जैसी प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहित कर रहा है।

किसी नियोजित अर्थव्यवस्था में एआई जैसी प्रौद्योगिकी वरदान और मुक्तिदायी साबित हो सकती थी क्योंकि इसकी मदद से लोगों को बार-बार दोहराये जाने वाले रूटीनी और उबाऊ कामों से मुक्त किया जा सकता था, ताकि वे अधिक रचनात्मक और चुनौतीपूर्ण कामों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें। परन्तु पूँजीवादी समाज में मुनाफ़े की केन्द्रीयता होने की वजह से तमाम अन्य प्रौद्योगिक खोजों की ही तरह एआई की खोज भी बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी का सबब बन रही है। ऐसे में मज़दूर वर्ग को अपने असली दुश्मन की पहचान करनी होगी। जिस तरह से मशीनें या कम्प्यूटर मज़दूरों की दुश्मन नहीं हैं बल्कि पूँजीवाद मज़दूरों का दुश्मन है, उसी तरह से हमारा दुश्मन एआई नहीं बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था है जिसमें निहित मुनाफ़े की होड़ की वजह से एआई जैसी कोई भी प्रौद्योगिक प्रगति अभिशाप बन जाती है।

पश्चिम बंगाल में फ़ासीवादी भाजपा की सरकार, जनता के अधिकारों पर चौतरफ़ा मार!

● अनन्त

पश्चिम बंगाल में भाजपा की सरकार बने अभी केवल दो महीनों से अधिक का समय गुज़रा है। लेकिन इस सरकार ने देश भर में चल रहे फ़ासीवादी दमन की परियोजना को अब बंगाल में सिरे से लागू करना शुरू कर दिया है। फिर चाहे वह बुलडोज़र राजनीति हो, हिन्दू-मुस्लिम ध्रुवीकरण का मसला हो, शिक्षा का साम्प्रदायिकीकरण हो, जनवादी दायरों को और अधिक संकुचित बनाने का फ़ासीवादी उपक्रम हो, महिला-विरोधी अपराधों में बढ़ोत्तरी हो, सामाजिक कार्यकर्ताओं का दमन हो, कल्याणकारी योजनाओं को सीमित करना हो, SIR के बहाने लोगों के वोट देने के अधिकार को छीनकर उन्हें कल्याणकारी योजनाओं से बाहर करने की साज़िश हो या फिर नये काले क़ानून बनाने का काम हो, हर ऐसे क्षेत्र में शुभेन्दु अधिकारी की भाजपा सरकार बहुत तेज़ी से तरक्की कर रही है।

भाजपा पहली बार पश्चिम बंगाल में सत्ता पर क़ाबिज़ हुई है। इस जीत के पीछे कई कारक रहे। एक ओर पश्चिम बंगाल की जनता पिछले पन्द्रह साल से सत्तासीन ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस के भयानक निरंकुश शासन, हर ओर फैले भ्रष्टाचार और टीएमसी के नेताओं की गुण्डागर्दी से त्रस्त थी। वहीं दूसरी ओर फ़ासीवादी भाजपा ने तमाम तरह की साम-दाम-दण्ड-भेद की नीतियों को अपनाया। भाजपा ने अपने तीन शस्त्रों का एक बार फिर से भरपूर इस्तेमाल किया, जिनको वह पहले ही बाक़ी राज्यों के चुनावों में आजमा चुकी है। पहला, “बांग्लादेशी घुसपैठियों” के नाम पर पश्चिम बंगाल की मुसलमान आबादी के खिलाफ़ साम्प्रदायिक माहौल तैयार कर साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करना। दूसरा, पूँजी की ताक़त के बूते चुनावी प्रचार में बेइन्तहा पैसा बहाना। तीसरा, रीढ़विहीन ‘केचुए’ (केन्द्रीय चुनाव आयोग) का भाजपा की ओर से ‘खुला खेल फ़रूखाबादी’ चलाया जाना, फिर चाहे वह ईवीएम में धांधली हो या विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) के नाम पर लाखों मतदाताओं से मताधिकार का बुनियादी अधिकार छीनना हो।

4 मई, 2026 को चुनाव परिणाम आने के साथ ही भाजपा के समर्थक जीत का जश्न मनाने के लिए कोलकाता की सड़कों पर बुलडोज़र लेकर उतरे और आने वाले समय में भाजपा का रुख क्या होगा, इसकी झलक दे दी। 9 मई को सरकार बनने के बाद से ही शुभेन्दु अधिकारी सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2024 में जारी दिशानिर्देशों को ताक पर रखकर बुलडोज़र की

ताबड़तोड़ कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं। इन कार्रवाइयों के नाम पर एक तरफ़ साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को और हवा दी गयी तो दूसरी तरफ़ ग़रीबों, रेहड़ी-खोमचा वालों को बिना पुनर्स्थापना का कोई अवसर दिये उनकी रोज़ी-रोटी पर हमला किया गया।

जैसा कि हमने पहले बताया भाजपा के सत्ता में आने में एक बड़ी भूमिका विशेष गहन पुनरीक्षण की रही, जिसके तहत लाखों मतदाताओं का नाम मतदाता सूची से काटा गया। कई सीटों में भाजपा की जीत का अन्तर एसआईआर के तहत मतदाता सूची से हटाये गये मतदाताओं की संख्या से कम है। यही नहीं, भाजपा ने 18 ऐसी सीटों पर जीत हासिल की है, जो मुस्लिम-बहुल क्षेत्र हैं और जहाँ एसआईआर के तहत बड़ी संख्या में

मुखर्जी को पाठ्यक्रम में शामिल करने का प्रस्ताव इसका हालिया सबसे बड़ा उदाहरण है। बंगाल में भाजपा श्यामा प्रसाद मुखर्जी को नायक के तौर पर पेश करके अपना वैचारिक वर्चस्व स्थापित करने के मंसूबे पाले हुए है। इसी कड़ी में 6 जुलाई (श्यामा प्रसाद मुखर्जी का जन्मदिवस) को बंगाल में सरकारी अवकाश घोषित किया गया है। सरकार मुखर्जी की 125 फुट ऊँची मूर्ति स्थापित करने जा रही है और मुख्यमंत्री अधिकारी ने मुखर्जी को ‘बंगाल का जनक’ तक घोषित कर दिया!

बच्चों की शिक्षा के साथ ही नहीं, बल्कि उनके शारीरिक और मानसिक विकास के साथ भी इस सरकार ने छेड़छाड़ शुरू कर दी है जिसका ताज़ा उदाहरण है स्कूलों के भोजन से अण्डा हटाना। भाजपा के सत्तासीन होने के

वजह से हुई है और भीड़ में ज़्यादातर लोग मुसलमान थे। जैसे ही एक जघन्य अपराधिक मामले को साम्प्रदायिक रंग देकर फ़ासीवादी भाजपा सरकार ध्रुवीकरण करने में लग गयी वैसे ही इसकी आड़ में शासन व्यवस्था की नाकामी पर पर्दा डालना आसान हो गया।

बंगाल में भाजपा सरकार केन्द्र तथा अन्य राज्यों में पहले से बैठी अपनी बिरादर फ़ासिस्ट सरकारों से सीखकर काले क़ानून भी लेकर आ रही है। जिस क़ानून को शुभेन्दु अधिकारी ने आते ही पास करवाया है वह क़ानून असहमति की हर आवाज़ को चुप कराने की ताक़त रखता है। यह क़ानून लोगों के बुनियादी जनवादी और नागरिक अधिकारों से उनको वंचित करता है। 29 जून 2026 को विधान सभा में पारित किये गये इस नये क़ानून का नाम है ‘पब्लिक सेफ़्टी एण्ड कण्ट्रोल ऑफ़ एण्टी-सोशल एक्टिविटीज़ बिल 2026’।

यह क़ानून किसी व्यक्ति को केवल इस आशंका के आधार पर कि वह भविष्य में “असामाजिक गतिविधि” कर सकता है, एक वर्ष तक हिरासत (Preventive Detention) में रखने की अनुमति देता है। यह क़ानून “दोष सिद्ध होने तक निर्दोष” के न्यायिक सिद्धान्त पर सीधा-सीधा हमला है। ग़ौरतलब है कि “असामाजिक गतिविधि” अपने आप में कोई परिभाषित श्रेणी नहीं है। इसके तहत सरकार आसानी से हर आवाज़ को “असामाजिक गतिविधि” करार देकर दबा सकती है। निश्चित तौर पर इस क़ानून का असल मक़सद राजनीतिक विरोधियों, सामाजिक व राजनीतिक कार्यकर्ताओं, आन्दोलनकारियों की आवाज़ को दबाने के लिए किया जायेगा। यह काला कानून पुलिसिया

शासन का फ़रमान है। यह पुलिस को क़ानूनेतर तौर-तरीके अपनाकर बर्बरता की खुली छूट देता है। इसके तहत ज़िला मजिस्ट्रेट, पुलिस आयुक्त या अधिकृत वरिष्ठ पुलिस अधिकारी न्यायालय में नियमित अपराधिक मुक़दमे या प्रक्रिया के बिना सीधे किसी को हिरासत में लेने का आदेश दे सकते हैं। इससे न्यायिक प्रक्रिया शुरू होने से पहले ही व्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित हो सकती है। इसके अलावा यह काला क़ानून मामूली से मामूली मामले में भी सम्पत्ति ज़ब्त जैसी कठोर कार्रवाइयों का रास्ता खोलता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस क़ानून का पुरजोर इस्तेमाल साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने के लिए भी किया जायेगा।

कुल मिलकर देखा जा सकता है कि पश्चिम बंगाल में सत्ता में आने के बाद फ़ासिस्ट भाजपा अपने निरंकुश शासन के नये प्रयोग कर रही है। वह गहराते संकट के बरक्स दमन का पाटा और तेज़ करने के रास्ते पर आगे बढ़ रही है। बंगाल के दो महीनों के भाजपा शासन का लेखा-जोखा इसी बात की ताकीद करता है। आज ज़रूरत है कि चुपचाप इस दमन को सहने के बजाय फ़ासिस्टों के तमाम हथकण्डों का मुँहतोड़ जवाब दिया जाये। बंगाल समेत देशभर में इनके लूट और आतंक के खिलाफ़ जनता में आक्रोश उबल रहा है। हर तरफ़ बेरोजगारी, महँगाई, कुशासन, भ्रष्टाचार से लोग त्रस्त हैं। अलग-अलग जगहों से बिखरे-बिखरे प्रतिरोध भी उभर रहे हैं; ज़रूरत है इन प्रतिरोधों को एक लड़ी में पिरोकर जनता को फ़ासीवादी निरंकुशता के विरुद्ध गोलबन्द, लामबन्द और संगठित किया जाये।



मतदाताओं के नाम हटाये गये थे। चुनाव जीतने के बाद फ़ासीवादी भाजपा सरकार ने सबसे पहले यह घोषणा की कि जिन लोगों का नाम एसआईआर के तहत काटा गया है, उन्हें राज्य सरकार की कल्याणकारी योजनाओं का लाभ नहीं मिलेगा। यह एक सामान्य बात नहीं है। जैसा कि कई विश्लेषकों ने टीका की है कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि यह डिटेंशन कैम्पों में लोगों को भेजने की दिशा में पहला क़दम साबित हो सकता है। आज उन्हें सामाजिक योजनाओं से वंचित किया जा रहा है, कल उन्हें रोज़गार के अवसरों से वंचित किया जायेगा, फ़ासीवादी परियोजना के तहत उनका सामाजिक बहिष्कार किया जायेगा, उन्हें रोज़ी-रोटी छिनने से लेकर निवास-स्थान तक की समस्या का सामना करना पड़ सकता है। उनके लिए कोर्ट-कचहरी और अदालतों के दरवाज़े बन्द किये जायेंगे। कुल मिलाकर तमाम नागरिक और जनवादी अधिकार उनसे छीन लिए जायेंगे, और एकमात्र विकल्प डिटेंशन सेण्टरों का होगा।

फ़ासिस्टों ने आते ही शिक्षा के साम्प्रदायिकीकरण में भी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है। श्यामा प्रसाद

फ़ौरन बाद कोलकाता नगर निगम (KMC) क्षेत्र के सरकारी और सहायता प्राप्त स्कूलों में चलने वाली मिड-डे मील (PM POSHAN) योजना के मेन्यू से अण्डा हटाया गया। यह बदलाव पूरे पश्चिम बंगाल में एक साथ लागू नहीं हुआ, बल्कि शुरुआत कोलकाता क्षेत्र से की गयी। ज़ाहिरा तौर पर आने वाले समय में इसे पूरे राज्य पर लागू किया जायेगा।

भाजपा के सरकार में आने के साथ बंगाल में बर्बर स्त्री-विरोधी अपराधों में भी अचानक बढ़ोत्तरी हुई है। विगत दो महीनों में क़रीब दर्ज़न भर से अधिक बर्बर स्त्री-विरोधी अपराधों के मामले सामने आये हैं। इनमें सबसे बड़ा उदाहरण कोलकाता से सटे बारूईपुर में 11 साल की नाबालिग बच्ची के साथ दुष्कर्म और हत्या का मामला है। इस पूरे मामले में भी सरकार और मीडिया को जैसे ही साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने का पहला मौक़ा मिला, वे उसमें लग गये। इस घटना के बाद आक्रोशित भीड़ ने एक कथित आरोपी की पीट-पीटकर हत्या कर दी। इस हत्या के बाद प्रशासन और मीडिया यह मामला बनाने में लग गये कि कथित आरोपी की हत्या उसकी ‘हिन्दू’ पहचान की

योद्धा और मक्खियाँ - लू शुन

शॉपेनहावर ने कहा है कि मनुष्य की महानता का अनुमान लगाने में, आत्मिक ऊँचाई और शारीरिक आकार को तय करने वाले नियम एक-दूसरे के विपरीत होते हैं। क्योंकि वे हमसे जितने ही दूर होते हैं, मनुष्यों के शरीर उतने ही छोटे दिखते हैं और उनकी आत्माएँ उतनी ही महान।

क्योंकि नज़दीक से देखने पर किसी भी व्यक्ति का नायकत्व कम लगने लगता है, उसके दाग और घाव साफ़ नज़र आते हैं, वह हममें से एक दिखता है, देवता, अलौकिक प्राणी या किसी नयी प्रजाति का जीव नहीं। वह बस मनुष्य होता है। लेकिन इसी में तो उसकी महानता होती है। जब कोई योद्धा युद्ध में खेत रहता है, तो मक्खियों को सबसे पहले उसके दाग और घाव नज़र आते हैं। वे उन पर टूट पड़ती हैं, गुनगुनाती हुई यह सोचकर बड़ी ख़ुश होती हैं कि वे परास्त योद्धा से भी महान वीर हैं। और चूँकि योद्धा मर चुका है और उन्हें भगाता नहीं, तो मक्खियाँ और भी ज़ोर से भनभनाती हैं, और कल्पना करती हैं कि वे अमर संगीत पैदा कर रही हैं, क्योंकि वे तो उससे कहीं ज़्यादा पूर्ण और दोषरहित हैं। सच है, कोई भी मक्खियों के दागों और घावों पर ध्यान नहीं देता।

फिर भी, योद्धा अपने तमाम दागों के बावजूद एक योद्धा है, जबकि सबसे पूर्ण और दोषरहित मक्खी भी मक्खी ही है।

चलो भागो, मक्खियो! तुम्हारे पास पंख होंगे और तुम भनभना सकती होगी, मगर तुम कभी भी एक योद्धा का मुक़ाबला नहीं कर सकती, कीड़े कहीं के!

मध्य प्रदेश के भाजपा “सुशासन” में हुआ एक और “सदाचारी” घोटाला!

● भारत

भाजपा के “रामराज्य” में एक और बड़े घोटाले की खबर सामने आयी है। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री मोहन यादव के परिवार ने उनके मुख्यमंत्री बनने के बाद उज्जैन और उसके आसपास 168 एकड़ ज़मीन खरीदी। अब दावा किया जा रहा है कि इनमें से ज़्यादातर प्लॉट ऐसी जगहों पर हैं, जहाँ बाद में उनकी ही सरकार ने सड़कें, हाईवे और दूसरे इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्टों का ऐलान किया। यानी कम दामों पर खरीदी गयी ज़मीनों के दाम कुछ ही वक्रत में आसमान तक पहुँचने लगे। ‘इण्डियन एक्सप्रेस’ के पत्रकार जय मजूमदार की रिपोर्ट के मुताबिक, 13 दिसम्बर 2023 को मुख्यमंत्री पद की शपथ लेने के बाद से दिसम्बर 2025 तक मोहन यादव के परिवार और सम्बन्धियों से जुड़ी रियल एस्टेट कम्पनियों ने 137 प्लॉट खरीदे हैं। इनका कुल क्षेत्रफल

क़रीब 168 एकड़ है और इनकी खरीद के लिए लगभग 45 करोड़ रुपये खर्च किये गये हैं। इसमें परिवार के साल 2026 के ज़मीन के लेन-देन (अगर कोई हों) शामिल नहीं हैं, क्योंकि ज़मीन के सरकारी रिकॉर्ड तुरन्त अपडेट नहीं किये जाते हैं।

रिपोर्ट के मुताबिक, ये खरीदारी मुख्यमंत्री की पत्नी सीमा यादव, बेटे वैभव यादव की पत्नी शालिनी यादव, भाइयों – नन्दलाल और नारायण यादव, नारायण यादव की पत्नी रेखा यादव, उनके बेटे अभय यादव, गोविन्द यादव और नीलेश यादव के नाम पर हुई है। इसके अलावा परिवार से जुड़ी चार रियल एस्टेट कम्पनियों ने भी ज़मीनें खरीदीं हैं। रिपोर्ट कहती है कि मोहन यादव के मुख्यमंत्री बनने के बाद से परिवार द्वारा खरीदी गयी 168 एकड़ ज़मीन में से लगभग 111 एकड़ ज़मीन ऐसी जगहों पर हैं जहाँ सरकार की तरफ़

से बड़े इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट लाये गये हैं। इनमें नयी सड़कें, सड़क चौड़ीकरण, रिंग रोड और हाईवे जैसे प्रोजेक्ट शामिल हैं। ‘इण्डियन एक्सप्रेस’ की रिपोर्ट में बताया गया है कि गंगेड़ी इलाक़े में मुख्यमंत्री के परिवार और उससे जुड़ी कम्पनियों ने अप्रैल 2024 के बाद 38 प्लॉट में लगभग 51 एकड़ ज़मीन खरीदी।

यह इलाक़ा उज्जैन-इन्दौर और उज्जैन-बडनावर हाईवे के जंक्शन के क़रीब पड़ता है। बाद में इस इलाक़े के आसपास सड़क से जुड़े अन्य प्रोजेक्ट सामने आये। इसी तरह उन्हेल, चन्देसरा, जयवन्तपुरा, कराड़िया और करौन्दिया जैसे इलाकों में भी ज़मीनें खरीदी गयीं। इसके अलावा पण्ड्याखेड़ी इलाक़े में मुख्यमंत्री मोहन यादव के परिवार ने लगभग 18 एकड़ ज़मीन खरीदी। बाद में इस इलाक़े को उज्जैन ‘मास्टर प्लान - 2035’ में

‘कमर्शियल ज़ोन’ के तौर पर चिह्नित किया गया। ग़ौर करने वाली बात यह है कि मुख्यमंत्री बनने के बाद खरीदारी की रफ़्तार और तेज़ हो गयी है! सिर्फ़ 2025 में ही परिवार ने 62 प्लॉट में फैली 92 एकड़ ज़मीन खरीद ली। यानी महज़ दो साल के अन्दर जितनी ज़मीन खरीदी गयी, उसका बड़ा हिस्सा सिर्फ़ एक ही साल में खरीदा गया!

इस रिपोर्ट ने भाजपा की “डबल इंजन” सरकार और उसके “सुशासन” की असलियत को एक बार फिर से सामने ला दिया है। मोहन यादव के परिवार ने ज़्यादातर ज़मीनें उन्हीं इलाकों में पहले कैसे खरीदीं, जिनके आसपास बाद में डेवलपमेंट प्रोजेक्ट पहुँच गये?

क्या अब ईडी मोहन यादव के यहाँ छपा मारेगी? अब इससे तो समझा ही जा सकता है कि जिस राज्य का मुखिया ही बड़े-बड़े घोटाले कर रहा है, तो छुटभैया नेता तो बेरोकटोक घोटाले

करेंगे ही। इसलिए आये-दिन मध्यप्रदेश में नये-नये घोटालों की खबरें सामने आती हैं। साथ ही “परिवारवाद” पर कांग्रेस को कोसने वाली भाजपा के नेताओं ने अपने परिवार का विकास करने में कांग्रेस के भी सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं! वैसे दिखावे के लिए तो मोदी जी भ्रष्टाचार के प्रति “ज़ीरो टॉलरेंस” की बातें करते हैं, लेकिन अपने नेताओं के घोटालों पर मौन धारण कर लेते हैं।

“सदाचार”, “राष्ट्रवाद” और “संस्कृति” की दुहाई देने वाली भाजपा का भ्रष्टाचार भी “राष्ट्रवादी” होता है। इसलिए मोहन यादव के भ्रष्टाचार पर कार्रवाई की माँग “देश-विरोधी” बन जाती है। “न खाऊँगा, न खाने दूँगा” तो जुमला था, असल नारा तो “खुद अकेला खाऊँगा, परिवार और दोस्तों को खिलाऊँगा” है!

वीबी-ग्रामजी के देशव्यापी विरोध प्रदर्शन में मनरेगा यूनियन ने भी की भागीदारी भगतसिंह जनअधिकार यात्रा की माँग - पूरे साल काम दो! काम के पूरे दाम दो!!

क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन 1 जुलाई, कलायत। कलायत ब्लॉक के रामगढ़ गाँव में क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन के बैनर तले वीबी-ग्रामजी (VB-GRAM-G) क़ानून के विरोध में देशव्यापी प्रदर्शन आयोजित किया गया। प्रदर्शन के दौरान 1 जुलाई से लागू वीबी-ग्रामजी क़ानून की प्रतियाँ जलाकर विरोध दर्ज कराया गया। यूनियन ने पूरे वर्ष रोजगार की क़ानूनी गारण्टी देने तथा वीबी-ग्रामजी योजना को रद्द करने की माँग उठायी। इस दौरान यूनियन की ओर से कलायत की बीडीपीओ ऋतु कुमारी को मज़दूरों की जायज़ माँगों से सम्बन्धित ज़ापन भी सौंपा गया।

यूनियन के साथी अजय ने कहा कि केन्द्र सरकार ने ग्रामीण ग़रीबों के अधिकारों से जुड़े लगभग दो दशक पुराने महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम (मनरेगा) को समाप्त कर उसकी जगह "विकसित भारत-गारण्टी रोजगार आजीविका मिशन (ग्रामीण)" [VB-GRAM-G] लागू कर दिया है। उनके अनुसार यह केवल नाम बदलने का मामला नहीं है, बल्कि ग्रामीण मज़दूरों के काम के अधिकार को कमज़ोर करने की कोशिश है।

उन्होंने आगे कहा कि नये क़ानून में कई ऐसे बदलाव किये गये हैं जो मनरेगा की अधिकार-आधारित व्यवस्था को कमज़ोर करते हैं। सबसे बड़ा बदलाव यह है कि नयी धारा 4(5) मनरेगा की वैधानिक रोजगार गारण्टी को एक अधिकार की बजाय केन्द्र सरकार की मंजूरी और बजट पर निर्भर योजना बना

देती है। अब केन्द्र सरकार हर साल यह तय करेगी कि किस राज्य को कितना पैसा मिलेगा। यानी किसी राज्य में काम की ज़्यादा ज़रूरत होने पर भी लोगों का रोजगार इस बात पर निर्भर करेगा कि केन्द्र ने कितना आबण्टन किया है।

उन्होंने बताया कि यदि कोई राज्य

क्षेत्रों में रोजगार गारण्टी लागू होगी। यानी पहले की तरह हर ग्रामीण परिवार के लिए मनरेगा का अधिकार स्वतः लागू नहीं रहेगा। यह प्रावधान मनरेगा की सार्वभौमिकता पर भी चोट है।

उन्होंने बताया कि नये क़ानून के तहत राज्यों की वित्तीय हिस्सेदारी भी बढ़ा दी

कर देती है, जिसके तहत जितनी माँग होती थी, उसके अनुसार धन उपलब्ध कराया जाता था। अब इसकी जगह प्रत्येक राज्य के लिए पहले से तय "मानक आबण्टन" होगा। आलोचकों का कहना है कि इससे मनरेगा एक अधिकार-आधारित, माँग-संचालित

सस्ती दरों पर मज़दूरों से काम कराने का अवसर मिलेगा।

रामगढ़ की मनरेगा मज़दूर उर्मिला, संतोष और कमलेश ने बताया कि नये क़ानून के अनुसार खेती के मौसम में 60 दिनों तक काम बन्द रहने से परिवार का गुज़ारा करना मुश्किल हो जायेगा।

उनका कहना था, "पहले ही मनरेगा के तहत बहुत कम काम मिलता था। यदि अब 60 दिनों तक भी काम नहीं मिलेगा, तो बच्चों का पालन-पोषण कैसे होगा? महंगाई लगातार बढ़ रही है और गैस सिलेण्डर भी महंगा हो चुका है। ऐसे में हमें वीबी-ग्रामजी नहीं, बल्कि मनरेगा चाहिए।"

सुनील ने बताया कि आज पूरे देश में भगत सिंह जनअधिकार यात्रा (बसजे) शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और महंगाई जैसे मुद्दों पर जन अभियान चला रही है। यह यात्रा भी मनरेगा मज़दूरों की माँगों का समर्थन करती है। उन्होंने कहा कि वर्तमान मनरेगा क़ानून भी अपने आप में अधूरा है, क्योंकि यह केवल 100 दिनों के रोजगार की गारण्टी देता है, जबकि वास्तविक आवश्यकता वर्ष के पूरे 365 दिनों के लिए क़ानूनी रूप से सुनिश्चित, सम्मानजनक और स्थायी रोजगार की है। ‘बसजे’ यात्रा की माँग है कि प्रत्येक ग्रामीण परिवार को पूरे वर्ष रोजगार का क़ानूनी अधिकार मिले तथा सभी ग्रामीण परिवारों के लिए 365 दिनों के रोजगार की क़ानूनी गारण्टी सुनिश्चित की जाये। इसी माँग के साथ भगत सिंह जनअधिकार यात्रा का नारा है — **"पूरे साल काम दो, काम के पूरे दाम दो।"**



अपने संसाधन जोड़कर मनरेगा के तहत अधिक लोगों को रोजगार देना चाहता है, तो वह भी केन्द्र सरकार द्वारा तय की गयी शर्तों और प्रक्रियाओं के अनुसार ही ऐसा कर सकेगा (धारा 4(6) और 22(5))। इससे राज्यों की वित्तीय और नीतिगत स्वायत्तता सीमित हो जायेगी। हालाँकि मौजूदा दौर में जब भाजपा की ही सरकारें अधिकतर राज्यों में हैं, तब राज्य सरकारों को भी केन्द्र सरकार की इस नीति से कोई खासा दिक्कत नहीं होने वाली है क्योंकि वह भी उतनी ही मज़दूर-विरोधी हैं।

इसी तरह नई धारा 5(1) के तहत केन्द्र सरकार यह तय करेगी कि किन ग्रामीण

गयी है। पहले राज्यों को कुल खर्च का 10 प्रतिशत वहन करना पड़ता था, लेकिन अब अधिकांश राज्यों के लिए यह हिस्सा बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया गया है। केवल पूर्वोत्तर और हिमालयी राज्यों के लिए यह 10 प्रतिशत ही रहेगा, जबकि बिना विधानसभा वाले केन्द्र शासित प्रदेशों का पूरा खर्च केन्द्र सरकार उठायेगी। इससे कई कम विकसित राज्यों पर अतिरिक्त वित्तीय बोझ पड़ेगा और मनरेगा जैसे रोजगार कार्यक्रम प्रभावित हो सकते हैं।

अजय ने कहा कि नई धारा 22(4) मनरेगा की उस व्यवस्था को भी समाप्त

क़ानून न रहकर सीमित बजट वाली सामान्य सरकारी योजना बन जायेगी। उन्होंने आगे कहा कि नया क़ानून साल भर स्थानीय ज़रूरत के आधार पर रोजगार उपलब्ध कराने की व्यवस्था को भी कमज़ोर करता है। धारा 6 (1) और 6 (2) के तहत मुख्य कृषि मौसम में 60 दिनों तक मनरेगा के काम पर रोक रहेगी। सरकार का तर्क है कि इससे बुवाई और कटाई के समय खेतों के लिए मज़दूर आसानी से उपलब्ध होंगे। लेकिन इससे साफ़ है कि खेतिहर और ग्रामीण मज़दूरों की सौदेबाज़ी की ताक़त कमज़ोर होगी और बड़े धनी किसानों तथा पूँजीवादी फ़ार्मरों को

मुम्बई में मानसून की पहली बारिश ने खोली ‘विकास’ के सारे दावों की पोल

● **अविनाश**

देश की आर्थिक राजधानी मुम्बई की ऊँची इमारतों, जगमगाती सड़कों और तेज़ रफ़्तार भागती गाड़ियों के बीच एक बड़ी आबादी ऐसी भी है जो तमाम मुश्किलात झेलती हुई ज़िन्दगी गुज़र-बसर करती है। ये वही मेहनतकश-मज़दूर आबादी है जिनके कंधों पर मुम्बई को बनाने और चलाने का पूरा बोझ है। यहाँ दो दुनियाएँ बसती हैं—एक तरफ़ देश का सबसे बड़ा वित्तीय और औद्योगिक केन्द्र है, जहाँ शेरार बाज़ार से लेकर कॉर्पोरेट मुख्यालय, बन्दरगाहों से लेकर फ़िल्म उद्योग तक पूँजी के लगभग सभी बड़े केन्द्र मौजूद हैं; तो दूसरी तरफ़ इस चमकदार तस्वीर के पीछे एक दूसरा पहलू भी मौजूद है जो कहीं अधिक भयावह है। ऊँची-ऊँची इमारतों, जगमगाती गाड़ियों और अरबों रुपये की मेगा परियोजनाओं के बीच वही शहर हर मानसून में पानी में डूब जाता है। सड़कें धँस जाती हैं, पुल गिर जाते हैं, इमारतें ढह जाती हैं, बिजली का करण्ट लोगों की जान ले लेता है, खुले नाले मौत का जाल बन जाते हैं और पेड़ों के गिरने से लोग मर जाते हैं। मरने वाले वे लोग होते हैं जो अपने मेहनत के दम पर इस शहर को चलाते हैं—दिहाड़ी मज़दूर, लोकल ट्रेन से रोज़ सफ़र करने वाले कर्मचारी, रिक्शा चालक, घरेलू कामगार या झुग्गी बस्ती में रहने वाले मेहनतकश परिवार। इस शहर की चकाचौंध भरी रोशनी के चिराग़ तले गहरा अँधकार बसता है। ये दुर्घटनाएँ और मौतें कोई किस्मत का लेखा नहीं हैं, बल्कि सरकार, प्रशासन, भ्रष्टाचार और रक्तपिपासु व्यवस्था का परिणाम हैं! इसी भ्रष्ट, मुनाफ़ा केन्द्रित, अमीरपरस्त और गरीब-विरोधी व्यवस्था की वजह से टूटी सड़कें, गड्ढे, गिरती इमारतें और घरों में घुसता गटर का गन्दा पानी—ये सब आम बातें हो गयी हैं। और इन सबके बीच दम तोड़ रही हैं—आम ज़िन्दगियाँ।

मानसून की पहली बारिश और मौतों का सिलसिला

इस साल मानसून की पहली ही तेज़ बारिश ने मुम्बई की तैयारियों की पोल खोल दी। चेम्बूर में स्कूल बस पर विशाल पेड़ गिरने से 11 वर्षीय बच्चे की मौत हो गयी। साकीनाका में खुले स्टॉर्म वॉटर ड्रेन में गिरकर एक 60 वर्षीय व्यक्ति की जान चली गयी। नेरुल में जलभराव के बीच करण्ट लगने से दो कॉलेज छात्रों की मौत हो गयी। सांताक्रूज़ में भारी बारिश के दौरान पेड़ गिरने से आठ मज़दूर गम्भीर रूप से घायल हो गये। भाण्डुप में सड़क धँस गयी और एक वाहन खुदाई वाले गड्ढे में जा गिरा। मानखुर्द में बहुमंज़िला इमारत ढहने से कई लोगों की जानें चली गईं, जिनमें छोटे बच्चे भी शामिल थे।

इन घटनाओं को अलग-अलग दुर्घटनाओं के रूप में देखने की भूल

नहीं करनी चाहिए। ये सभी एक ही लापरवाही और कुव्यवस्था की अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ हैं—जिनसे बदहाल इन्फ़्रास्ट्रक्चर, खराब रखरखाव, प्रशासनिक लापरवाही और जवाबदेही का अभाव साफ़ तौर पर दिखता है। यह सब उस शहर में हो रहा है जहाँ देश की सबसे अमीर नगरपालिका—बृहन्मुम्बई महानगरपालिका (बीएमसी)—मौजूद है। मुम्बई देश को सबसे अधिक कर राजस्व देने वाले शहरों में से एक है। नगर निगम का वार्षिक बजट कई राज्यों से भी अधिक है। फिर भी हर मानसून में शहर की हालत ऐसी हो जाती है मानो पहली बार बारिश हुई हो! ये सारी घटनाएँ उस जगह हुई हैं, जहाँ भाजपा “ट्रिपल इंजन” सरकार होने का दम्भ भरती है—यानी भाजपा यहाँ केन्द्र, राज्य और सबसे अमीर नगरपालिका बीएमसी में बहुमत के साथ मौजूद है। ऐसे में यह पूरा मामला सरकार की लापरवाही और भ्रष्टाचार से जुड़ता है। मगर क्या करें? भाजपा सरकार में भ्रष्टाचार भ्रष्टाचार नहीं होता!

विकास किसका और किसके लिए?

पिछले एक दशक में मुम्बई और उसके आसपास हजारों करोड़ रुपये की परियोजनाओं का उद्घाटन हुआ है—कोस्टल रोड, अटल सेतु, मेट्रो, मुम्बई-पुणे मिसिंग लिंक, ट्रांस-हार्बर कनेक्टिविटी और अनेकों फ्लाईओवर। महाराष्ट्र सरकार इन्हें “विश्वस्तरीय इन्फ़्रास्ट्रक्चर” और “नये भारत की पहचान” बताती है। लेकिन दूसरी ओर वही शहर आज भी हर साल जलभराव, टूटी सड़कों, ढहती इमारतों और असुरक्षित सार्वजनिक ढाँचे से जूझता है।

ये दो तस्वीरें साथ-साथ कैसे दिखती हैं? सरकार की इस भेदभावपूर्ण प्राथमिकता का क्या कारण है? क्या इस “विकास” में मज़दूरों-मेहनतकशों की आबादी शामिल नहीं है? यह दोहरा मापदण्ड किसलिए और क्यों? इसका स्पष्ट कारण बस इतना है कि मौजूदा फ़ासीवादी सरकार के “विकास मॉडल” के अन्तर्गत प्राथमिकता आम नागरिकों की आवश्यकताओं को नहीं, बल्कि पूँजी निवेश और रियल एस्टेट विस्तार को दी जा रही है। हालाँकि यहाँ भी घोटालों और भ्रष्टाचार का पूरा जंजाल फैला हुआ है! ख़ैर, ये नयी परियोजनाएँ राजनीतिक प्रचार और कॉर्पोरेट मुनाफ़े का माध्यम बन जाती हैं, वहीं पुरानी सड़कों, पुलों, जलनिकासी व्यवस्था और मेहनतकश बस्तियों को बस रामभरोसे छोड़ दिया जाता है! **यही कारण है कि मुम्बई का इन्फ़्रास्ट्रक्चर एक विचित्र विरोधाभासी स्थिति में दिखायी देता है—एक ओर हजारों करोड़ रुपये की नयी परियोजनाएँ और दूसरी ओर हर मानसून में ध्वस्त**

होती बुनियादी सुविधाएँ जो दरअसल नंगे तौर पर पूँजीवादी विकास की असलियत बयान करता है। एक तरफ़ ऐयाशी और आरामगाहों की मीनारें और दूसरी तरफ़ दर्द, आँसू और मुफ़लिसी की झोंपड़पट्टियाँ!

ऐसे में कुछ लोग बारिश की वजह से हो रही इन तमाम मौतों-हादसों को महज़ प्राकृतिक घटना बताकर पल्ला झाड़ लेते हैं। सरकारी प्रणाली भी इसी तरह के (कु)तर्क देती रहती है। जबकि इन घटनाओं की नींव काफ़ी पहले ही तैयार की जा चुकी है। **ये घटनाएँ साल-दर-साल दुहरायी जाती हैं, मगर प्रशासनिक लापरवाही और भ्रष्टाचार बस उनके दोबारा घटित होने का इंतज़ार करता है। ये दुर्घटनाएँ और मौतें आकस्मिक या प्राकृतिक नहीं, बल्कि व्यवस्था-जनित हत्याएँ हैं।** आइए कुछ घटनाओं से इसे समझने की कोशिश करते हैं कि कैसे साल-दर-साल ये घटनाएँ घटती रहती हैं:

- 14 मार्च 2019—छत्रपति शिवाजी महाराज टर्मिनस (CSMT) के पास स्थित फुटओवर ब्रिज अचानक गिर गया। शाम के व्यस्त समय में हुए इस हादसे में छह लोगों की मौत हुई और तीस से अधिक लोग घायल हुए। सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि कुछ महीने पहले ही इस पुल का स्ट्रक्चरल ऑडिट किया गया था। यदि पुल को सुरक्षित बताया गया था, तो वह गिरा कैसे? यदि उसमें ख़तरा था, तो उसे जनता के लिए खुला क्यों रखा गया?

- 2018—अन्धेरी का जी.के. गोखले ब्रिज भारी बारिश के दौरान रेलवे ट्रैक पर गिर पड़ा। बाद में सामने आया कि पुल की हालत पहले से ही ख़राब बतायी गयी थी। इसके बावजूद समय रहते प्रभावी कार्रवाई नहीं हुई। सवाल यह है कि जब ख़तरे की जानकारी थी, तब भी लोगों की जान जोखिम में क्यों डाली गई?

- 2019—डोंगरी की एक रिहायशी इमारत ढहने से 14 लोगों की मौत हुई। जाँच में सामने आया कि भवन पुराना था, मरम्मत अपर्याप्त थी और सुरक्षा मानकों का पालन प्रभावी ढंग से नहीं कराया गया।

- 2026—मानखुर्द में एक अवैध बहुमंज़िला इमारत ढह गई। पाँच बच्चों सहित छह लोगों की मौत हुई, जिनमें दो वर्ष की एक बच्ची भी थी। सवाल यह है कि आम मेहनतकशों की ज़िन्दगी इतनी सस्ती क्यों है?

2021 में जारी बीएमसी (BMC) डेटा के अनुसार साल 2018 और 2021 के बीच इमारतों या उनके हिस्सों के गिरने की 1,810 घटनाएँ हुईं। इनमें 99 मौतें और 376 लोग घायल हुए। वहीं, पिछले 30 सालों में मुम्बई और मुम्बई मेट्रोपॉलिटन क्षेत्र में 10 बड़ी इमारतों के गिरने की घटनाओं में 325 से ज़्यादा

लोग मारे गये। फिर भी अधिकांश आपराधिक मुकदमे लम्बित हैं।

इसके अलावा, मुम्बई में लगभग हर मानसून में सड़कें धँसती हैं—जो अब आम बात हो गयी है। इसकी वजहें हैं: ख़राब निर्माण, खुदाई के बाद सड़क की कमजोरी, और पानी की ठीक से निकासी न होना। हालिया उदाहरण—जुलाई में हुई बारिश में भाण्डुप में एक बड़ी सड़क धँसने से एक गाड़ी खुदाई वाले गड्ढे में गिर गयी। सवाल यह है कि यदि हर वर्ष सड़कों की मरम्मत पर करोड़ों रुपये खर्च किये जाते हैं, तो वही सड़कें अगले मानसून तक क्यों नहीं टिक पातीं? **यहाँ समस्या केवल इंजीनियरिंग की नहीं है बल्कि निजीकरण और ठेकेदारी व्यवस्था की है, जहाँ गुणवत्तापूर्ण निर्माण और जनसुरक्षा के मापदण्डों की अनुपालना से अधिक महत्व नये ठेकों के ज़रिये मुनाफ़ा पीटने को दिया जाता है। बार-बार होने वाले मरम्मत कार्यों में जनता के टैक्स के दम पर खड़े किये गये संसाधनों का लगातार दुरुपयोग किया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि समस्या सिर्फ़ पुराना इन्फ़्रास्ट्रक्चर नहीं है, बल्कि निजी मुनाफ़े पर टिकी एक ऐसी व्यवस्था की है जिसमें लापरवाही, भ्रष्टाचार और जवाबदेही का अभाव एक आम प्रवृत्ति है, जिसमें सरकारें जन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं, बल्कि चन्द धन्नासेठों की तिजोरियों को भरने के उद्देश्य से काम करती हैं। भाजपा शासन में तो इस भ्रष्ट मुनाफ़ाखोर तंत्र की ही तूती बोल रही है!**

"कागज़ों पर सफ़ाई" और हजारों करोड़ खर्च मगर परिणाम कहाँ है?

2005 की विनाशकारी बाढ़ के बाद मुम्बई में जलनिकासी व्यवस्था सुधारने के लिए अनेक परियोजनाएँ शुरू की गयीं। इनमें माठी नदी का चौड़ीकरण और गाद निकालना (डीसिल्टिंग) प्रमुख था। इस पर लगभग 1,100 करोड़ रुपये खर्च किये गये। लेकिन बाद में आर्थिक अपराध शाखा (EOW) की जाँच में आरोप सामने आये कि गाद निकालने के नाम पर फ़र्जी रिकॉर्ड तैयार किये गये, फ़र्जी बिल बनाये गये, परिवहन के झूठे दस्तावेज़ पेश किये गये और ठेकेदारों तथा अधिकारियों की मिलीभगत से करोड़ों रुपये का घोटाला हुआ। यदि नदी की सफ़ाई केवल कागज़ों पर हो और वास्तविकता में नदी गाद से भरी रहे, तो हर भारी बारिश में जलभराव होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है! यह भ्रष्टाचार और इन्फ़्रास्ट्रक्चर विफलता के बीच का सम्बन्ध साफ़ तौर पर दिखाता है।

इसी तरह 2005 की बाढ़ के बाद 'B R I M S T O W A D' (Brihanmumbai Storm Water

Drain Project) के तहत शहर की जलनिकासी क्षमता बढ़ाने की योजना बनायी गयी। दो दशकों में इस पर हजारों करोड़ रुपये खर्च हुए। फिर भी हर मानसून में दादर, सायन, किंग्स सर्कल, कुर्ला, अन्धेरी, हिन्दमाता, मिलन सबवे और अनेक अन्य क्षेत्र जलमग्न हो जाते हैं। यदि ये परियोजनाएँ सफल रहीं, तो शहर हर वर्ष क्यों डूबता है? यदि परियोजनाएँ अधूरी हैं, तो उनकी जवाबदेही किसकी है? यदि संसाधन खर्च हुए, तो उसका परिणाम ज़मीन पर क्यों नहीं दिखता?

हर साल होने वाली ये घटनाएँ महज़ इतिफ़ाक़ नहीं हैं, बल्कि परिस्थितियों का संज्ञान न लेने, लापरवाही, गैर-ज़िम्मेदाराना काम और जवाबदेही की कमी को दिखाता है। अभी भी कुछ भक्तजन (हालाँकि अब ऐसी विभूतियों की तादाद लगातार कम होती जा रही है!) कह सकते हैं कि बारिश, पानी जमाव, पेड़ों के गिरने के पीछे भाजपा सरकार और प्रशासन कैसे ज़िम्मेदार हैं? जब कॉर्पोरेट और बिल्डर लॉबी को मुनाफ़े के लिए ठेके दिये जाते हैं, जिनमें इस काम का कोई अनुभव नहीं होता तो यह किसकी ज़िम्मेदारी बनती है? और जब ऐसी कई परियोजनाओं का सत्यानाश हो जाता है तो वह किसकी ज़िम्मेदारी होती है? जैसे पेड़ों के रखरखाव का ठेका इस बार एक इन्फ़्रा कंस्ट्रक्शन कम्पनी को 42.4 करोड़ रुपये में दिया गया था, जिसका इस काम को लेकर कोई अनुभव ही नहीं था। तब सवाल तो बनता है—और यह सवाल सबको पूछना भी चाहिए। मगर बीएमसी की वर्तमान मेयर भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की रितु तावड़े को भी इन सब पर कहाँ जवाब देना है?

इसलिए कहा जाता है कि **"सदाचारी" और "राष्ट्रवादी" भाजपा के राज में भ्रष्टाचार, भ्रष्टाचार नहीं होता!** यह बात मुम्बई-पुणे के बीच बनी 'मिसिंग लिंक' से भी साबित होती है, जिसे सात हजार करोड़ रुपये में बनाया गया और जिसका 1 मई 2026 को उद्घाटन किया गया। वह एक बारिश भी नहीं झेल पाया; भूस्खलन की वजह से पुणे-मुम्बई का रास्ता बन्द करना पड़ा। मगर जब इसका उद्घाटन हुआ तो मुख्यमंत्री फड़नवीस ने इसे “आर्किटेक्चर मार्वल” बताया था, जिसे 7 देशों की मदद से बनाया गया है और जो 240 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ़्तार से चलने वाले तूफ़ान का सामना कर सकता है! अब जब मिसिंग लिंक में गड्ढे, भूस्खलन और सात हजार करोड़ रुपये के इस 'अजूबे' की हकीकत तथा भ्रष्टाचार की चर्चाएँ मीडिया और सोशल मीडिया पर जारी हैं, तो मुख्यमंत्री फड़नवीस उनके खिलाफ़ उठती आवाज़ को लेकर विधानसभा में जनता को गालियाँ दे रहे हैं। कह रहे हैं—“जिनको कुत्ता नहीं पूछता, वह आजकल सोशल मीडिया पर आकर सबको और (पेज 19 पर जारी)

ग़ज़ा में जारी इज़रायली नरसंहार पर जस्टिस मुरलीधर की अध्यक्षता में यूएन कमीशन की रिपोर्ट : एक बार फिर सामने आया साम्राज्यवादियों और ज़ायनवादियों का घिनौना चेहरा !

● प्रियम्बदा

7 अक्टूबर 2023 के बाद से फ़िलिस्तीन में जारी इज़रायली बर्बरता से शायद ही कोई इंसान मुँह मोड़ सकता हो। फ़िलिस्तीन के प्रश्न ने न सिर्फ़ दुनिया को दो खेमे में बाँट दिया है बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर मिलने वाले न्याय और मानवाधिकारों के तमाम दावों की भी सच्चाई को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर दिन के उजाले की तरह साफ़ कर दिया है। साम्राज्यवादियों और ज़ायनवादियों की बर्बरता के साथ जहाँ एक तरफ़ दुनिया भर के शासक वर्ग खड़े होते देखे गये, वहीं आम जनता का व्यापक हिस्सा अलग-अलग देशों में सड़कों पर उतरकर हत्यारी ताक़तों के खिलाफ़ लड़ता हुआ पाया गया और फ़िलिस्तीन के समर्थन में खड़ा था।

पिछले ढाई वर्षों से अधिक समय से ग़ज़ा में जारी इज़राइली क्रल्लेआम की वास्तविकता हर बीतते दिन के साथ दुनिया के सामने आ रही है। इसी कड़ी में बीते दिनों भारत में दिल्ली उच्च न्यायालय समेत अन्य न्यायालयों में न्यायाधीश रह चुके जस्टिस मुरलीधर की अध्यक्षता में यूएन कमीशन की एक रिपोर्ट जारी की गयी। क़ब्ज़ा की गयी फ़िलिस्तीनी ज़मीन पर मानवाधिकारों और अन्तरराष्ट्रीय क़ानून के उल्लंघन की जाँच करने के लिए गठित किया गया यह आयोग 27 मई 2021 से काम कर रहा है। बीते 23 जून 2026 को जारी इस रिपोर्ट ने एक बार फिर से ज़ायनवादियों की अमानवीयता को तथ्यों और साक्ष्यों के साथ सामने रखा है और यह सवाल भी खड़ा किया है कि आखिर कब तक हम फ़िलिस्तीनियों पर हो रहे इस अत्याचार को सहते रहेंगे?

संयुक्त राष्ट्र आयोग द्वारा जारी इस रिपोर्ट के शुरुआती पन्ने के एक हिस्से को हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं:

"कमीशन ने यह पाया है कि इज़रायली सुरक्षा बलों द्वारा ग़ज़ा में मानवता के विरुद्ध अपराध को अंजाम दिया गया है जिसमें लोगों की हत्याएँ करना, यातना देना, बलात्कार, यौन हिंसा, जबरन विस्थापन और भुखमरी को एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल करना

शामिल है। इसके अलावा कमीशन ने यह भी पाया है कि (i) ग़ज़ा में एक समूह के तौर पर फ़िलिस्तीनियों की आबादी बढ़ने की क्षमता को नष्ट कर दिया गया है और नवजात शिशुओं के जन्म को रोकने के भी तमाम उपाय किये गये हैं; (ii) ऐसी परिस्थितियाँ जानबूझकर पैदा की गयी हैं जिससे की फ़िलिस्तीनी आबादी एक समूह के तौर पर ज़िन्दा ही न रह पाये। ये दोनों ही कृत्य नरसंहार को अंजाम देने वाले मूल कृत्य हैं।"

इसके आगे आयोग टीम ने इस बात को भी पुख्ता तौर पर बताया है कि पिछले लगभग तीन सालों से इज़रायल द्वारा जानबूझकर बेगुनाह लोगों के घरों को, अस्पतालों को, स्कूलों को तबाह किया गया है और यहाँ तक कि लोगों को विस्थापित कर भेजे गये सुरक्षित कहे जाने वाले स्थानों पर भी योजनाबद्ध तरीक़े से बमबारी की गयी है। बच्चों को ख़ास तौर पर इज़रायली सेना द्वारा निशाना बनाये जाने को लेकर भी रिपोर्ट में कई दिलदहलाने वाले तथ्यों और घटनाओं का ज़िक्र किया गया है। बच्चों का क्रल्ल करने के लिये इज़रायल ख़ासतौर पर स्नाइपर्स और बेहद सटीक निशाना लगाने वाले ड्रोंस का इस्तेमाल करता है। अक्टूबर 2023 से 2025 के बीच 20,179 फ़िलिस्तीनी मासूमों की हत्या की जा चुकी है जो कि फ़िलिस्तीन में दो साल के भीतर हुई हत्याओं का 30% है। 44,000 से अधिक बच्चे इस दौरान घायल हुए हैं और क़रीब-क़रीब 58,000 ने अपने घरवालों को खो दिया है। यह महज़ आँकड़ा नहीं है बल्कि उन बच्चों की संख्या है जिन्होंने अभी इस दुनिया में क़दम ही रखा था।

साथ ही, महिलाओं और फ़िलिस्तीनी कैदियों के साथ हो रहे भयंकर अत्याचार पर भी रिपोर्ट में बात है। इज़रायली जेतलों में बन्द फ़िलिस्तीनी नागरिकों को न सिर्फ़ अमानवीय परिस्थितियों में भूखा-प्यासा रखा जाता है बल्कि उनके साथ इज़रायली सैनिकों द्वारा मारपीट और यौन शोषण भी आम बात है। कैद किये गये लोगों के साथ इज़रायली दुर्व्यवहार की चरमसीमा तब और खुलकर सामने आयी जब 19 मई

को ग़ज़ा में राहत सामाग्री पहुँचने से रोकने के लिए कई देशों के नागरिकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया। मालूम हो कि 44 मुल्कों से 50 जहाज़ों में सवार इंसाफ़पसन्द नागरिक, सामाजिक कार्यकर्ता ग़ज़ा के लोगों के लिये मानवीय सहायता पहुँचाने का काम कर रहे थे मसलन, खाना, दवा, बच्चों के लिए किताबें इत्यादि लेकर ये लोग निकले थे। मगर सेटलर उपनिवेशवादियों ने इसे रोकने के लिए अपनी पूरी ताक़त लगा दी। अन्तरराष्ट्रीय जलक्षेत्र में घुसकर सभी अन्तरराष्ट्रीय क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाते हुए तक़रीबन 430 लोगों को बन्दी बनाया गया और भीषण यातनाएँ दी गयीं जिसकी वजह से कई लोग गम्भीर रूप से घायल हुए थे, तो कइयों ने बाहर आकर इज़रायली सेना पर दुर्व्यवहार, उत्पीड़न और बलात्कार तक के गम्भीर आरोप लगाये।

जस्टिस मुरलीधर की अध्यक्षता में बने इस आयोग ने कई ऐसे तथ्य दुनिया के सामने लाये हैं जिन्हें पढ़कर ज़ायनवादी हत्यारों की असलियत का पता चलता है। इज़रायली नेताओं-मंत्रियों के भड़काऊ भाषण और बयान को भी रिपोर्ट में चिह्नित किया गया है जिसमें खुलेआम फ़िलिस्तीनियों के क्रल्ल, बच्चों को मारने और पूरी फ़िलिस्तीनी क्रौम को नेस्तनाबूत करने की बात है। अक्टूबर 2023 के बाद से इसने भीषण नरसंहार का रूप लिया मगर उससे पहले भी लगभग सात दशकों से फ़िलिस्तीनियों की जगह-ज़मीन पर क़ब्ज़ा करने और उन्हें एक क्रौम के तौर पर ख़त्म करने के लिए व्यवस्थागत और योजनाबद्ध तरीक़े से औपनिवेशिक ज़ायनवादी ताक़तों ने अपने ज़ुल्म का सिलसिला जारी रखा हुआ था।

रिपोर्ट ने इस बात का भी खुलासा किया है कि संघर्ष विराम की घोषणा यानी "बोर्ड ऑफ़ पीस" बनने के बाद से भी बेगुनाह नागरिकों की हत्याओं का सिलसिला बदस्तूर जारी है। शान्ति की घोषणा के बाद 900 से अधिक फ़िलिस्तीनी मारे गये हैं और 1000 से अधिक घायल हैं। इस समझौते के तहत ग़ज़ा में प्रतिदिन 600 टूक मानवीय आपूर्ति भेजे जाने का सबसे ज़रूरी

काम भी पूरा नहीं हुआ है। इज़रायली सेना ग़ज़ा पट्टी के लगभग 64 प्रतिशत हिस्से पर अपना नियंत्रण फैला चुकी है, जो कि अपने आप में ही युद्धविराम समझौते के तहत परिकल्पित 53 प्रतिशत से अधिक है। बीते 28 मई को नेतन्याहू ने इज़रायली सेना को निर्देश देते हुए ग़ज़ा पट्टी पर अपना नियंत्रण 70 प्रतिशत तक बढ़ाने को कहा। वैसे तो "बोर्ड ऑफ़ पीस" का बनना ही अपने आप में एक प्रहसन था। हालाँकि बीते महीनों के हालात ने उन लोगों के लिए भी तस्वीर साफ़ कर दी है जिन्हें साम्राज्यवादी हत्यारों की देख-रेख में बनायी गये इस "बोर्ड ऑफ़ पीस" से उम्मीद बची थी।

जस्टिस मुरलीधर की अध्यक्षता में यूएन कमीशन की यह रिपोर्ट कई मायनों में बेहद ज़रूरी है। यह उन तमाम लोगों को फ़िलिस्तीन के मसले पर बातचीत करने के लिए मजबूर करती है जो आज से पहले तक फ़िलिस्तीन में जारी विभीषिका पर चुप्पी साध कर बैठे थे। जहाँ भारत के उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश अपनी जाँच में इज़रायल को फ़िलिस्तीनियों के नरसंहार का ज़िम्मेदार बता रहे हैं और उस पर आपराधिक मुक़दमे की माँग कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर भारत के सत्तासीन प्रधानमंत्री अपनी क़रीबियाँ नेतन्याहू जैसे अपराधी के साथ बढ़ा रहे हैं। यह बात अपने आप में किसी त्रासदी से कम नहीं है।

मगर इस रिपोर्ट और न्यायाधीश मुरलीधर की अपनी समस्याएँ भी हैं। वह इज़रायल को एक राज्य के तौर पर देखते हैं और फ़िलिस्तीन के मुक्ति के सवाल पर "दो राज्य समाधान" पर यक़ीन करते हैं। "दो राज्य समाधान" का तर्क अपने आप में ही ग़लत है क्योंकि इज़रायल कोई राज्य नहीं है, कोई देश नहीं है। जिस देश को साम्राज्यवाद इज़रायल के नाम पर प्रचारित करता है, वह वास्तव में फ़िलिस्तीन ही है। बीसवीं सदी की शुरुआत में पश्चिम एशिया में तेल मिलने के कुछ ही वर्षों बाद में साम्राज्यवाद के लिए यह सबसे रणनीतिक माल बन गया जिसपर क़ब्ज़े के लिए साम्राज्यवादियों और

ज़ायनवादियों ने फ़िलिस्तीनियों को उनकी जगह-ज़मीन से बेदख़ल करना शुरू किया। 1948 से पहले इज़रायल का धरती पर कोई नामोनिशान नहीं था। इसे पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ़्रीका में पश्चिमी साम्राज्यवाद (पहले ब्रिटिश साम्राज्यवाद और बाद में अमेरिकी साम्राज्यवाद) के हितों, विशेषकर तेल से जुड़े हितों, की हिफ़ाज़त के लिए कृत्रिम तौर पर एक मुल्क के तौर पर खड़ा किया गया था। यह आज भी अमेरिकी साम्राज्यवादी हत्यारों द्वारा फेंके हुए टुकड़ों पर पल रहा है। इसलिए हत्यारे इज़रायल द्वारा दिया जाने वाला "आत्मरक्षा" का तर्क भी सिरे से बकवास है। अगर आप ज़ोर-ज़बरदस्ती से किसी दूसरे राष्ट्र की ज़मीन पर क़ब्ज़ा करते हैं, उसके लोगों का नियमित और व्यवस्थित तौर पर नरसंहार करते हैं, अपने हथियारों के ख़रीददारों के सामने नुमाइश करने मात्र के लिए उन पर बम बरसाते हैं और नये-नये हथियारों का प्रयोग करते हैं, तो आपको उन लोगों द्वारा प्रतिरोध के लिए तैयार रहना चाहिए। यह प्रतिरोध न सिर्फ़ ऐसी दमित क्रौम का हक़ है, बल्कि इसके अलावा उनके पास और कोई विकल्प भी नहीं है। इसलिए, "दो राज्य समाधान" के रास्ते से फ़िलिस्तीनियों के लिये कभी न्याय और शान्ति सम्भव ही नहीं है।

ग़ज़ा की जनता ने अमेरिकी और इज़रायली बर्बरों के आगे कभी घुटने नहीं टेके हैं। तीन साल से जारी अकल्पनीय नरसंहार के बावजूद साम्राज्यवादी ताक़तें ग़ज़ा की जनता के साहस, संकल्प और मुक्ति की उनकी चाहत को छीन नहीं पाये हैं। यह दिखलाता है कि जनता कभी हारती नहीं है। दमनकारी हत्यारे अपने तमाम उन्नततम हथियारों के रहते अन्ततोगत्वा लोगों की एकता के सामने धराशायी हो जाते हैं। यही इतिहास की गति रही है। लोग तब तक लड़ते हैं जब तक जीतते नहीं हैं। फ़िलिस्तीन की मुक्ति ही असल में दुनिया में आज वास्तविक न्याय और इंसाफ़ का पैमाना हो सकती है। इंसानियत की मुक्ति का प्रश्न भी इससे अटूट रूप से जुड़ा हुआ है।

मुम्बई में मानसून की पहली बारिश ने खोली 'विकास' के सारे दावों की पोल

(पेज 18 से आगे)

मुख्यमंत्री को भी गाली देते हैं। कुछ भाड़े के टट्टू इस मिसिंग लिंक प्रोजेक्ट के बारे में पैसा ले-लेकर सोशल मीडिया पर लिख रहे थे। अगर महाराष्ट्र का अपमान करोगे, तो छोड़ूंगा नहीं।"

यह भी ग़ज़ब का "लोकतंत्र" है! जो जनता अपनी गाड़ी कमाई से टैक्स देकर आपके बड़े-बड़े प्रोजेक्ट्स को फण्ड करती है, जब वह काम में देरी या

कमियों पर सवाल उठाये, तो वह सीधे 'भाड़े के टट्टू' और 'कुत्ते' की श्रेणी में आ जाती है? वाह मुख्यमंत्री जी! आम नागरिक दिन-रात गड़बड़ वाली सड़कों पर सफ़र करता है, टोल टैक्स भरता है, दुर्घटनाओं में अपनी जान तक गँवा देता है और जब सोशल मीडिया पर सवाल पूछता है या अपना हक़ माँगता है, तो उसे 'पेड ट्रोल' बता दिया जाता है! कमाल की 'क्रोनोलॉजी' है! सरकार

की नीतियों और प्रोजेक्ट्स पर सवाल उठाना 'महाराष्ट्र का अपमान' कैसे हो गया? सरकार बुनियादी ढाँचों से लेकर बड़े-बड़े प्रोजेक्ट्स में फ़ेल साबित हो रही है, मगर जनता सवाल भी नहीं उठा सकती है! फ़ासीवादी भाजपा सरकार की यह प्रणाली आपको हर जगह दिखायी देगी, चाहे वह राम मन्दिर घोटाले की बात हो, पेट्रोल में इथेनॉल की मिलावट की बात हो, अर्थनीति की

बात हो, विदेश नीति की बात हो, या फिर पेपर लीक की बात हो! फिर आखिर किस बात पर बात हो सकती है? जनता करे तो करे क्या? सिर्फ़ "वाह, मोदी जी! वाह!" बोले और थालियाँ और तालियाँ बजाएँ। वरना सबको "देशद्रोही" का तमगा दे दिया जायेगा! बाक़ी कोई कुछ और बोले तो 'हिन्दू-मुस्लिम', 'पाकिस्तान लिंक', 'देशद्रोही', 'अर्बन नक्सल', 'षड्यंत्र', 'टुकड़े-टुकड़े

गैंग', 'फॉरिन फण्डिंग' कहकर बात को घुमा दो!

दरअसल देश का असली अपमान तो तब होता है जब जनता के "चुने हुए प्रतिनिधि" जनता को ही कीड़े-मकोड़े समझने लगते हैं। ऐसे में कब तक आप भी तमाशबीन बनकर यह खेल देखते रहेंगे? इसलिए उठिए! सवाल कीजिए! संगठित होकर सड़कों पर उतारिए!

“शुचिता” और “संस्कारों” के भाजपाई ठेकेदारों का ‘चाल-चेहरा-चरित्र’ फिर हुआ बेनकाब!

राम मन्दिर के चन्दे में किया करोड़ों का घोटाला!

● भारत

राम मन्दिर के नाम पर समूची हिन्दू आबादी की एकमात्र प्रवक्ता व प्रतिनिधि होने का दावा करने वाली भाजपा के शासन में एक और बड़ा घोटाला सामने आया है। अयोध्या में राम मन्दिर के दानपात्र से करोड़ों रुपये के घोटाले का खुलासा हुआ है। यह घोटाला सार्वजनिक रूप से तब सामने आया जब समाजवादी पार्टी के मुखिया अखिलेश यादव ने अपने ‘एक्स’ अकाउण्ट पर राम मन्दिर में दान में मिले करोड़ों रुपये गायब होने का आरोप लगाया। मन्दिर के संचालन के लिए 15 सदस्यों का एक ट्रस्ट बना था, जिसमें आरएसएस के कई लोग शामिल किये गये थे। ट्रस्ट के पदाधिकारियों ने शुरुआत में चुप्पी साध ली। मामले के बाहर आने पर ट्रस्ट ने खुद ही गोपनीय स्तर पर सन्दिग्ध कर्मचारियों को पकड़ कर और उनसे पूछताछ करने की नौटंकी की। विवाद बढ़ने लगा तो ट्रस्ट ने मुख्यमंत्री को पत्र लिखकर जाँच की माँग की। कई लोगों ने एफ़आईआर दर्ज करवाने का प्रयास किया, लेकिन पुलिस ने इसे दर्ज नहीं किया। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने तो चोरी के मसले को उठाने वाले लोगों के ही ऊपर राम मन्दिर को बदनाम करने का आरोप लगाया।

इसके बाद उत्तर प्रदेश सरकार की तरफ़ से विशेष जाँच दल (एसआईटी) का गठन किया गया, जिसने इस मामले की जाँच कर पहली रिपोर्ट सौंप दी है, हालाँकि अभी तक इस रिपोर्ट को सार्वजनिक नहीं किया गया है। राम मन्दिर का मसला कोई राष्ट्रीय सुरक्षा का मसला तो है नहीं! इसलिए सरकार द्वारा जाँच रिपोर्ट का सार्वजनिक न किया जाना और अधिक सन्देह पैदा करने वाला है। चूँकि घोटाले का मसला सुर्खियों में आ गया इसलिए राम मन्दिर में दान की रकम के गबन से जुड़े आरोपों को लेकर 25 जून को आठ लोगों के खिलाफ़ प्राथमिकी दर्ज की गयी। एफ़आईआर में ट्रस्ट सदस्य अनिल मिश्रा के रिश्तेदार अनुकल्प मिश्रा, लवकुश मिश्रा, महासचिव चम्पत राय के चालक रामशंकर यादव, गणना कर्मी मनीष यादव, अविनाश शुक्ला, करुणेश पाण्डेय, रमाशंकर मिश्र और गणना प्रभारी सुभाष श्रीवास्तव को नामज़द किया गया है। इसके अलावा कई अज्ञात लोगों को भी आरोपी बनाया गया है। शुरुआती जाँच और पकड़े गये सन्दिग्धों से पूछताछ के आधार पर आठ करोड़ रुपये से अधिक के गबन के सीधे संकेत मिले हैं।

हालाँकि सोशल मीडिया पर यह आँकड़ा लगभग 200 करोड़ रुपये तक होने की बात कही जा रही है। लेकिन इसकी कोई आधिकारिक पुष्टि नहीं हुई है। चन्दे की गणना के काम में शामिल एक पूर्व बैंक कर्मचारी ने बताया कि गिनती के दौरान कई बार सीसीटीवी बन्द कर दिये जाते थे और ढेरों सीसीटीवी फुटेज डिलीट भी किये गये। चौंकाने वाली बात यह है कि चोरी केवल नकदी तक सीमित नहीं थी। कर्मचारी ने दावा किया कि चढ़ावे के गहनों का कोई भी रिकार्ड नहीं रखा जाता था। दान में आये करोड़ों रुपये के सोने-चाँदी के ज़ेवरात भी गायब किये जाने के आरोप लगे हैं।



गौरतलब है कि अब एसआईटी के गठन और उसकी प्रारम्भिक रिपोर्ट पर भी कई सवाल उठ रहे हैं। एसआईटी ने जाँच पूरी करने के तीन दिन बाद रिपोर्ट सौंपी और वह भी अपर मुख्य सचिव (गृह) संजय प्रसाद को, जो खुद राम मन्दिर ट्रस्ट के सदस्य हैं! इसलिए एसआईटी की जाँच को खानपूर्ति के समान बताया जा रहा है। साथ ही ऐसी रिपोर्टें भी सामने आ रही हैं कि चढ़ावा चोरी मामले में आरोपों में घिरे ट्रस्ट के महासचिव चम्पत राय, न्यासी अनिल मिश्रा और निर्माण प्रभारी गोपाल राव को बचाने की कोशिश की जा रही है और एफ़आईआर में अभी तक उनका नाम नहीं दर्ज किया गया है। हालाँकि चम्पत राय और अनिल अपने पद से इस्तीफ़ा देकर अपनी साख़ बचाने का प्रयास कर रहे हैं। चम्पत राय ‘विश्व हिन्दू परिषद’ के उपाध्यक्ष हैं। चन्दा घोटाले में चम्पत राय और मन्दिर ट्रस्ट पर कई सवाल उठ रहे हैं। इतने लम्बे समय से जब चन्दे की चोरी हो रही थी, तब क्या मन्दिर के ट्रस्ट को इसकी

जानकारी नहीं थी? ऐसा होना सम्भव नहीं लगता कि चोरी लम्बे समय तक चलती रहे और ट्रस्ट के लोगों को कुछ पता ही ना हो! पैसे की गिनती में शामिल कई कर्मचारी जिनका मासिक वेतन 14 हजार रुपये के करीब था, वे एकाएक अमीर हो गये, महँगी गाड़ियों में घूमने लगे और अयोध्या के आसपास ज़मीनें ख़रीदीं। चम्पत राय के निजी ड्राइवर और व्यवस्थापक रामशंकर यादव के पास 60-65 कमरों के होटल और कई रेस्टोरेण्टों में शेयर कहाँ से आये? क्या ट्रस्ट के लोग इससे भी अनजान थे, यह बात गले से उतरने वाली नहीं लगती। इस पूरे प्रकरण में मन्दिर ट्रस्ट के लोगों की भूमिका सन्दिग्ध है।

में ख़रीदा और फिर थोड़े समय बाद ही उसे राम मन्दिर ट्रस्ट को 18.5 करोड़ रुपये की भारी-भरकम क़ीमत पर बेच दिया। ट्रस्ट द्वारा ज़मीन को ख़रीदने के मामले में और भी कई ऐसे ही आरोप लगे। इन आरोपों की जाँच के लिए राधेश्याम मिश्रा समिति का गठन हुआ था, लेकिन इसकी जाँच का क्या हुआ किसी को आज तक कुछ नहीं पता है। अतीत में राम मन्दिर से सम्बन्धित घपले के और भी ऐसे कई मामले सामने आये, उनमें भी किसी का बाल बाँका नहीं हुआ।

संघ परिवार और भाजपा से जुड़े लोग अक्सर ही देश में “प्राचीन संस्कृति”, “संस्कारों”, “शुचिता”, “राष्ट्रभक्ति” और “राष्ट्रवाद” की दुहाई देते नज़र आ जाते हैं। बहुत सारे लोग तब ताज्जुब में पड़ जाते हैं जब संधियों-भाजपाइयों को स्त्री उत्पीड़न, बलात्कार, भ्रष्टाचार, बच्चों की तस्करी, बन्धक बनाना, यौन शोषण और हत्या तक के तरह-तरह के अवैध-अनैतिक कृत्यों में शामिल पाते हैं। वैसे तो तमाम दलों और संगठनों में नाना प्रकार के लोग पाये जा सकते हैं, लेकिन भाजपा और संघ परिवार

में अक्सर ही धिनौनेपन की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। अतीत से लेकर वर्तमान तक में फ़ासीवादियों के दावों और हकीकत में ज़मीन-आसमान का अन्तर पाया जाता रहा है। हिटलर और मुसोलिनी के प्यादे भी एक तरफ़ “प्राचीन गौरव”, “राष्ट्रवाद”, “संस्कार” और “ईमानदारी” की बात करते पाये जाते थे और दूसरी तरफ़ उनके हाथ हर प्रकार की गन्दगी से लिथड़े होते थे। तमाम तरह के फ़ासीवादियों का बस एक ही काम होता है “शुचिता” और “संस्कारों” की जुमलेबाज़ी कर अपनी गन्दगी छिपाना और ख़ासकर बड़ी पूँजी समेत समस्त पूँजीपति वर्ग की सेवा करना। भारतीय फ़ासीवादियों के “संस्कारी” चेहरे के पीछे की असलियत से इनकी जन्मकुण्डली की भी सही निशानदेही की जा सकती है। भला ऐसा क्यों होता है कि “संस्कार” और “प्राचीन भारतीय हिन्दू संस्कृति” का ढिंढोरा पीटने वाले ही कुसंस्कारों की गटरगंगा में सबसे अधिक गोते लगाते पाये जाते हैं? असल बात यह है कि

फ़ासीवाद के मूल में ही वास्तविकता और वास्तविक अन्तरविरोधों पर पर्दा डालने की प्रवृत्ति निहित होती है। इसका काम ही पूँजीवाद के असल अन्तरविरोधों को छुपाकर नक़ली अन्तरविरोध खड़ा करना होता है। जनता की असली समस्याओं से उसका ध्यान भटकाकर उसे प्रतिक्रिया की दिशा में धकेलना होता है ताकि वे अपने असली दुश्मन, यानी कि पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग, को न पहचान सके। फिर भला अपने भ्रष्टाचार और चरित्र की गन्दगी को संधी संस्कारों के चोगे तले छुपाते हैं, तो उसमें विस्मय कैसा? संघ परिवार के लोगों की चिकनी-चुपड़ी बातों पर यकीन करके इनके “संस्कारों” और “शुचिता” पर भरोसा कोई मूर्ख ही कर सकता है। संधी-भाजपाइयों के चरित्र में उतने ही संस्कार होते हैं, जितनी “वीर” सावरकर के चरित्र में वीरता थी! असल में संस्कारों का इनका सारा ढिंढोरा इनके चरित्र और आत्मा पर पड़े बदनुमा दागों को छिपाने के लिए होता है। हर प्रकार के फ़ासीवादियों का बस एक ही काम होता है और वह होता है जनता को “शुचिता” और “संस्कार” का पाठ पढ़ाते हुए उसे फ़र्जी मुद्दों के आधार पर बाँटकर आपस में लड़ाना और अपने पूँजीपति आक्राओं की तहे दिल से सेवा करना। इटली, जर्मनी ही नहीं बल्कि भारत के वर्तमान दौर से भी यह स्पष्ट हो जाता है।

आज एक तरफ़ प्रधानमंत्री की ‘न खाऊँगा न खाने दूँगा’ की जुमलेबाज़ी भी चलती रहती है और वहीं दूसरी तरफ़ संधी-भाजपाई दोनों हाथों से माल लूट रहे हैं और प्रधानमंत्री मोदी के द्वारा जनता को कर्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ाया जा रहा है। जनता को त्याग और बलिदान की शिक्षा दी जा रही है जबकि देश का पूँजीपति वर्ग और नेताशाही जोंक की तरह जनता का खून चूसने में लगे हुए हैं। इसलिए इसमें भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि भाजपा-संघ ने राम के नाम पर अपनी राजनीति चमकाते-चमकाते राम मन्दिर में ही घोटाला कर दिया।

यह है इन “प्राचीन भारतीय हिन्दू संस्कृति” के रखवालों और तथाकथित रामभक्त फ़ासीवादियों की असली रामभक्ति! मतलब कि राम नाम की लूट मची है लूट सके तो लूट! यही है इनकी “संस्कृति” और यही हैं इनके “संस्कार”! राम मन्दिर के चन्दे में हुए घोटाले ने एक बार फिर से दुनिया के सामने संधियों का ‘चाल-चेहरा-चरित्र’ उजागर कर दिया है।